संस्कृति-रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का ४ था रत्न

विवेचन युक्त--

# अंतगडदसा सूत्र

अनुवादक विवेचक--

श्री घीसूलालजी पितलिया सिरियारी

प्रकाशक--

अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना ( म. प्र. )

 प्राप्ति-स्थान 

१ श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना ४५७-५५० (मध्य-प्रदेश)

२ " एदुन बिल्डिंग, पहली धोबी तलाब लेन
बम्बई—४०००० २

३ " सिटी पुलिस, जोधपुर (राजस्थान)

मूल्य— ४—००

सप्तमावृत्ति
२०००

वीर संवत् २५१०
विक्रम संवत् २०४१
अगस्त सन् १९८४

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस, सैलाना (म. प्र.)

# अस्वाध्याय

निम्नलिखित चौंतीस अस्वाध्याय टाल कर स्वाध्याय करना चाहिये।

**आकाश सम्बन्धी दस अस्वाध्याय व उनकी कालमर्यादा**

१ बडा तारा टूटे तो — एक प्रहर।
२ दिशा-दाह* ... ... . — जबतक रहे।
३ अकाल मे मेघ-गर्जना हो तो . — दो प्रहर।
४ ' विजली चमके तो . — एक प्रहर।
५ " विजली कडके तो . — दो प्रहर।
६ शुक्ल पक्ष की एकम, बीज, तीज को — प्रहर रात्रि तक।
७ आकाश मे यक्ष का चिन्ह . — जब तक दिखाई दे।
८–९ काली और सफेद धूअर ... ... — जब तक रहे।
१० आकाश-मण्डल धूलि से आच्छादित.. .. — " ।

**औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय–**

११–१३ हड्डी, रक्त और मास, ये तिर्यच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो तो १०० हाथ के भीतर हो।

---

* आकाश मे किसी दिशा मे नगर जलने या अग्नि की लपटे उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

१४ अशुचि की दुर्गन्ध आवे या दिखाई दे तब तक ।
१५ श्मशान भूमि— सौ हाथ से कम दूर हो तो।
१६ चन्द्रग्रहण--खण्ड ग्रहण मे ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर
१७ सूर्य ग्रहण " १२ " १६ "।
१८ राजा का अवसान होने पर। जब तक नया राजा घोषित न हो।
१९ युद्ध स्थान के निकट ...... जब तक युद्ध चले।
२० नजदीक मे पंचेन्द्रिय का शव, जब तक पड़ा रहे।
२१—२५ आषाढ, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा। ...... दिन-रात।
२६–३० इन पूर्णिमाओ के बाद की एकम "।
३१–३४ प्रात, मध्यान्ह, संध्या और अर्द्धरात्रि। १–१ मुहूर्त्त तक।

उपरोक्त अस्वाध्याय को टाल कर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुँह नही बोलना तथा दीपक बिजली आदि के उजाले मे नही बाँचना चाहिए।

**नोट**— मेघ-गर्जनादि में अकाल, आर्द्रा नक्षत्र से पूर्व और स्वाति के बाद का माना गया है, क्योंकि बाकी का काल वर्षा ऋतु का स्वाभाविक काल होने से उस समय होने वाली गर्जना आदि स्वाभाविक मानी जाती है।



# द्वितीयावृत्ति की पीठिका

श्री अ० भा० सा० जैन संस्कृति-रक्षक संघ, सैलाना द्वारा सितम्बर १९८० में विवेचन युक्त अंतगडदसा सूत्र की प्रथमावृत्ति प्रकाशित की गई थी। इससे पूर्व पं० रत्न श्रीमान् घेवरचन्दजी वाठिया न्यायतीर्थ व्याकरणतीर्थ सिद्धात शास्त्री द्वारा अनूदित पाँच आवृत्तियाँ प्रकाशित हुई थी। यह संघ द्वारा प्रकाशित अंतगड सूत्र की सातवी तथा विवेचन युक्त अंतगडदसा की द्वितीयावृत्ति है।

३–९–८० के 'प्रकाशकीय निवेदन' में स्वर्गीय रतनलालजी डोशी ने एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी——

"इस आवृत्ति मे सूत्र पाठ प्राचीन पद्धति के अनुसार लम्बे बना दिये है। छोटे पाठ इसलिए बनाये थे कि इससे सामान्य पढे लिखे साधु-साध्वियो और स्वाध्यायियो को सुविधा रहे। उन्हे अर्थ समझने मे सरलता हो। इतना ही नही, वे धीरे-धीरे मूल पाठ का अर्थ भी समझने लगे। बड़े पाठ होने से कई बार मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि मूलपाठ कुछ सुनाया और कुछ भाग छोड कर अर्थ से ही काम चला लिया है। छोटे पाठ देने का प्रयत्न केवल मेरा ही नही है। जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. द्वारा अनुवादित एव सन् १९६५ में प्रकाशित अंतकृतदसा सूत्र मे भी छोटे छोटे पाठ किये है और कही कही तो विशेष छोटे। सन् १९७९ मे प्रकाशित आवृत्ति मे भी ऐसा हुआ है। मुझे स्मरण हो रहा है कि पं० बेचरदासजी दोशी ने भी छोटे पाठ रखने के विषय मे अपना मत व्यक्त

किया था और कदाचित् 'रायपसेणइय सुत्त' में ऐसा किया था।"

चूँकि संघीय आवृत्तियो का प्रकाशन स्वाध्यायी श्रावकों के लिए है अत. हमें इस वात पर ध्यान देना है कि हमारे वक्ता व श्रोता कैसे है ? मेरी यह अनुभूति रही कि अनेक स्थानों पर हमारे वक्ता किताव मे ही अपनी दृष्टि समेटे हुए पढ़ते जा रहे है और श्रोताओ की ओर उनकी नजर ही नही जाती। ऐसे वक्ताओं के लिए श्रोताओं की यह प्रतिक्रिया रही कि अगर हमे यहाँ आकर किताब ही सुननी है तो वह तो हम घर पर भी पढ़ लेगे। विल्कुल सही शिकायत है यह। अव दूसरा नजारा देखिए---श्रोताओं का आग्रह है कि मूल पाठ सुनाया जाय। मूल पाठ मे कोई कतर ब्योत उन्हे गँवारा नही। वे वाकायदा किताबे ले कर वैठते है और ज्योहि वक्ता ने मूलपाठ को कही भी छोड़ा वे तुरत टोकने लगते है, इस वात की उन्हे कोई परवाह नही कि वह व्याख्यान सभा है। वहाँ तो ऐसा लगता है मानो वक्ता उन सबका परीक्षार्थी है जो उसका वोलने का अभ्यास चैक कर रहे है।

पर्युपण पर्व मे पूरे अंतकृतदशा का मूल पाठ सुनाया जाय अथवा नही ? माना कि वे श्रद्धालु श्रोता मूलपाठ का अर्थ नही समझते पर फिर भी भगवान् की वाणी से कान पवित्र करना चाहते है। क्या ही अच्छा हो, पूरा मूलपाठ पढा जाए, पूरा अर्थ पढा जाए, फिर कुछ विवेचन किया जाए। परन्तु तीनों के लिए समय कहा है ? मुश्किल से डेढ दो घंटे व्याख्यान चल सकता है। इस वीच करीव एक सामायिक के वाद तो

दूसरा प्रहर लग जाता है, जिसमे अंग सूत्र होने के कारण अंतकृत का मूलपाठ पूरा का पूरा नही पढा जा सकता।

मैने पर्युपण के सर्वाधिक प्रवचन मेरे धर्माचार्य पूज्य गुरुदेव श्री श्री १००५ श्री प्रकाशचदजी म. सा. से सुने है। उनकी शैली यह है कि वे अपने व्याख्यान मे अर्थ और विवेचन को साथ लेकर चलते है और वीच वीच मे कही कही मूलपाठ का प्रयोग भी होता है। मैने जितनी वार उनसे अंतकृत सुना, ऐसा लगा कि हर वार विवेचन मे नयापन है। एक ही प्रसंग को वे विविध दृष्टिकोणो से उजागर करते है। श्रोताओ की आँखे और मन की पाँखे उनसे विलग नही हो पाती।

मै एक श्रोता की दृष्टि से प्रत्येक स्वाध्यायी मे 'प्रकाश प्रतिविम्व' देखने को लालायित हूँ। मेरे जैसे अनगिनत श्रोता नए नए भाव मुनना चाहते है। नया सुनाने के लिए अध्ययन चाहिए। अपनी जानकारी को शब्दो मे वॉधने की क्षमता चाहिए। 'मै सबको संतुष्ट व प्रसन्न करूँगा।' यह अनूठा आत्म विश्वास चाहिए। अपने को प्रसन्न, उल्लसित एव संतुष्ट किए विना दूसरो को प्रसन्न नही किया जा सकता, उनमे जिन-वाणी के प्रति अमोघ आस्था उत्पन्न नही की जा सकती। वर्ष भर आगमो से अलग थलग रह कर पर्युपण पर्व मे सुना देने से रस नही आता, रसायन तो वहुत दूर की चीज है।

दिनाक १।८।८४

संघ सेवक—
घीसूलाल पितलिया
सिरियारी

# प्रथमावृत्ति की पीठिका

**प्रासंगिक**—श्रुतानंदी सुज्ञ सज्जनो ! निर्ग्रंथनाथ-श्रमण भगवान्-जिनेन्द्रवरवीर महावीर स्वामीजी की मुक्तिवाहिनी के वीर सेनानियों ! ! अशरणशरण तारणतरण चतुर्विध संघ के मूल्यवान स्तंभों ! ! ! आपका कोटि-कोटि अभिनंदन ! द्वादशांगी गणिपिटक का अष्टम अंग श्री अन्तगडदसा रूप आभरण आपके अंजलि पुटो मे देकर हमारी प्रसन्नता प्रवर्द्धमान हो रही है। आपने जिस आगमानुराग से इसे स्वीकार किया है, वह स्तुत्य, प्रशंस्य एवं श्लाघ्य है। नयन-पथ से यह आगम-रथ सानंद गति करे, यह अवितथ है

**अंतगडदसा की संक्षिप्त झाँकी**—जैसाकि आपश्री भली-भांति जानते है, काल-समवाय की विचित्रता से हमारा शास्त्र-सिंधु सूखता चला गया और बत्तीस सूत्र रूप स्वल्प बिन्दु ही रह गये। अंगों मे सदा-सर्वदा अष्टम अंग 'अंतगडदसा' हुआ करता है। वैसे तो नय-निक्षेप आदि विवेचन पद्धतियों से अन्त शब्द की व्याख्या विस्तार से विद्वद्जन कर सकते है, पर यहाँ 'अन्त' शब्द का प्रकरण संगत अर्थ है—चतुर्गति रूप संसार-परिभ्रमण की परिसमाप्ति। जिनने संसार-संचरण को निश्शेष कर दिया उन मुक्त आत्माओ को 'अन्तगड—अन्तकृत' कहा जाता है।

वैसे तो धर्मकथानुयोग मे सिद्ध होने वालो के जीवन प्रसंग अनेक स्थानो पर उपलब्ध होते है, परन्तु 'अंतकृत' अंग की यह मौलिक विशेषता है कि इसके समस्त चरित्रनायक उसी भव मे मुक्ति प्राप्त करने वाले होते है। इसी शाश्वत सिद्धात के अनुसार प्रस्तुति मे ९० महान् आत्माओ का वर्णन है, जिन्होने कर्म क्षय कर सिद्धि-लाभ किया। जिसके प्रथम वर्ग मे दस अध्ययनो की संख्या हो—उसे 'दसा' कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि श्री अन्तकृतदशा सूत्र मे अंत करने वाले आत्माओ अंकन किया गया है।

**विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकरण—**

श्री अन्तकृतदशा सूत्र में ९० चारित्रात्माओ का वर्णन है जिसे समझने के लिए अनेक तालिकाये बनाई जा सकती है–

**(१) वर्गात्मक तालिका**—आठ वर्गो मे क्रमश १०+८+१३+१०+१०+१६+१३+१० अध्ययन गुफित है। समूची संख्या ९० प्राप्त होती है।

**(२) शासनात्मक तालिका**—तीर्थंकर भगवन् अर्हत अरिष्टनेमी स्वामी के शासनवर्ती ५१ आत्माओ ने इस सूत्र मे स्थान पाया है, तो अपश्चिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के ३९ चरित नायको का भी इतिवृत्त यहाँ आया है। इस प्रकार बावीसवे भगवान् के ५१ तथा चौवीसवें भगवान् के ३९, कुल ९० आत्मा दोनो के सुखद शासन में मुक्त हुए।

**(३) लिंगात्मक तालिका**—यद्यपि प्रत्येक जीव अवेदी अवस्था मे ही आत्म-स्वास्थ्य की उपलब्धि करता है, तथापि

पूर्ववेद की अपेक्षा यों कहा जा सकता है कि ५७ पुरुषो ने और ३३ महिलाओ ने मुक्ति प्राप्त कर वर्तमान के अन्तकृतदसा सूत्र को समृद्ध किया ।

(४) **वंशात्मक तालिका**——श्री अन्तकृत दसा सूत्र वे परिशीलन से ज्ञात होता है कि भगवान् अरिष्टनेमी स्वामी वे समय में यदुवंश एवं भगवान् महावीर स्वामी के समय ं श्रेणिक महाराज का वंश उल्लेखनीय रहा । यही कारण है वि अन्तकृत के सर्वाधिक चरितनायक यादवकुल-तिलक रहे है दूसरा स्थान श्रेणिक महाराज की भार्याओ ने प्राप्त किया है ५१ यदुवंगी २३ श्रेणिक भार्याओ के अतिरिक्त छट्ठे वर्ग वे सोलह चरित नायको मे १ अर्जुन मालाकार कुल के व अति-मुक्त राजवंशी कुल के शेष चौदह गाथापति—इस प्रकार राज-वंशियो का पलड़ा भारी रहा है ।

**इतिहास स्पर्श**——वैसे तो तीर्थ स्थापना होते समय भगवान् द्वारा दी गई त्रिपदी के आधार पर विचक्षणमति गण-धर द्वादशागी की रचना करते हैं, तथापि वर्तमान मे उपलब्ध होने वाले ग्यारह अंगो के अनुशीलन से यह ध्यान मे आ रहा है कि भगवान् महावीर स्वामी से श्रेणिक महाराज उम्र मे बड़े थे तथा भगवान् को केवलज्ञान होने के कुछ वर्षो मे ही काल-धर्म को प्राप्त हो गये थे । भगवती सूत्र की उत्थानिका मे तो श्रेणिक महाराज व चेलना रानी का राजगृह के वर्णन मे उल्लेख मिलता है, पर ज्ञाताधर्मकथा से लेकर विपाक तक के सभी अंग तथा अन्यान्य शास्त्रों की देह-निर्मिति महाराज

कोणिक के शासनकाल में हुई है। श्री निरयावलिका पंचक मे श्रेणिक द्वारा अपघात किए जाने से कोणिक द्वारा चम्पा में निवास किए जाने का वर्णन मिलता है। महाराज श्रेणिक मगध व अंग देश के सम्राट थे। मगध की राजधानी राजगृह वह अंग देश की राजधानी चम्पा थी।

उपरोक्त आधार से यह मानना निर्विवाद है कि उपलब्ध अन्तकृत दशा का निर्माण वीर निर्वाणोपरान्त के प्रथम बारह वर्षो में हुआ था, जिसका श्रीगणेश चम्पा नगरी से हुआ।

सातवे वर्ग मे श्रेणिक महाराज की नंदा आदि जिन १३ राजरानियो का वर्णन है, उनकी दीक्षा श्रेणिक महाराज की विद्यमानता मे उनकी अनुज्ञा से हो गई थी। नंदा बुद्धिशाली अभयकुमारजी की माता थी। अभयकुमारजी की दीक्षा भी श्रेणिक महाराज की हयाती मे ही हो गई थी। अभयकुमारजी के प्रधानमंत्री पद पर रहते श्रेणिक महाराज को कैद किया जाना कोणिक महाराज के लिए सभव ही नही था—यह तथ्य भी उपरोक्त कथ्य को प्रमाणित करता है।

श्री निरयावलिका सूत्र मे स्पष्टतया विस्तार से कोणिक द्वारा श्रेणिक को बन्दी बनाने आदि की घटना बताई गई है। श्री अन्तकृत दशा के आठवे वर्ग मे जिन काली आदि दस रानियो का वर्णन है, उनकी दीक्षा श्रेणिक महाराज के कालधर्म को प्राप्त हो जाने के बाद हुई थी।

श्री भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक ९ मे महाशिलाकण्टक संग्राम व रथमूसल संग्राम का वर्णन है। श्री निरयावलिका मे

वर्णन है कि श्रेणिक महाराज ने अपनी जीवितावस्था में सेचनक गंधहस्ति व अठारह लड़ी का दिव्य हार कोणिक के सगे छोटे भाई वेहल्लकुमार को दे दिया था। हार-हाथी के लिए उपरोक्त दोनो संग्राम हुए। चेड़ा महाराज ने शरणागत दोहित्र की रक्षा के लिए कालकुमार आदि दसो कोणिक भ्राताओ को मौत के घाट उतार दिया तब देवताओं की मदद से कोणिक महाराज ने विजय प्राप्त की।

जव काली रानी आदि ने युद्ध में गये पुत्रो के वारे में पूछा तो भगवान् ने काली रानी के मंगलमय भविष्य के लिए कालधर्म के समाचार फरमाये तब पुत्र-शोक से अभिभूत काली आदि दसो रानियाँ विरक्त हुई तथा कालान्तर में कोणिक महाराज की आज्ञा से दीक्षित हुई।

**वर वरेण्य**——जव हम अन्तकृत का व्यक्तिपरक दृष्टि से मूल्यांकन करने को जाते हैं, तो वावीसवे तीर्थंकर भगवान् यदुकुलकलाधर भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी को विस्मृत नही कर सकते। ५१ नैयाओं के खिवैया भगवान् थे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भी ३९ नावो की पतवार थामी थी तथा तूफान एवं झंझा के झकोरों में भी नैयाओं को पार लगाया था। ९० महापुरुषो में गजसुकुमार, अर्जुन मालाकार एव अतिमुक्तक अणगार का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। इन सव के अतिरिक्त 'कृष्ण महाराज' का व्यचितत्व भी विस्मृति की वस्तु तो नही, यद्यपि ज्ञाताधर्मकथाग, उत्तराध्ययन आदि विविध आगमों में उनके अनेक जीवन प्रसंग छुए गये हैं तथापि

अन्तकृतदशा सूत्र में तो उनके वहु आयामी जीवन के विविध पहलुओ को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। चूंकि श्री अन्तकृत-सूत्र आपके करकमलों में विराजित है तथा इसका उपयोग-पूर्वक पठन-पाठन आपश्री करेगे ही, अतः सभी उल्लिखित महापुरुपो के वारे मे विशेष कहने की स्थिति नही है। संकेत इतना ही कि जाज्ज्वल्यमान जीवन के धनी इन सभी महापुरुपों व महासतियो का प्रचण्ड प्रकाश हमारी घनघोर तिमिराछन्न आत्माओ के प्रदेशो तक पहुँचे तो अच्छा।

**धर्म और सम्प्रदाय**——भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर व नौ गण थे। चौवीस तीर्थंकर भगवान् के कुल मिलाकर १४५२ गणधर व १४५० गण (गच्छ, संप्रदाय) थे। भगवान् सुधर्मा स्वामी के पट्टासीन होने के वाद समस्त मुनि मण्डल एक हो गया था तथा आज विक्रमीय वीसवी सदी मे जो अनेकता चरम सीमा तक पहुँची हुई दृष्टिगोचर हो रही है, वह सवके सामने है।

संप्रदाय का जन्म धर्म के लिए होता है। धर्म के लिए न हो तो उसे 'दुष्प्रदाय' कह दिया जाना ठीक है, तथा वह विचार की वस्तु ही नही है। संप्रदाय वल्लरी धर्म-वृक्ष के सहारे फलती फूलती है। संप्रदाय धीरे-धीरे धर्म वृक्ष का जीवन रस सोखने लग जाय तव क्या होगा? यह एक कटु सत्य है कि संप्रदाय पहले पहल धर्म के लिए होती है, सम्प्रदाय का कर्त्ता अपने नाम से सम्प्रदाय चलाने का कत्तई इच्छुक नही होता, पर उसके गुण विशेप उसका नामकरण करते है। धीरे-

धीरे सम्प्रदाय की जड़े जम जाती है, तो फिर धर्म सम्प्रदाय के लिए हो जाता है।

मित्रों ! यह भूल जाने की वस्तु नहीं है। इस तथ्य को हमेशा याद रखो कि सम्प्रदाय रास्ता हो सकता है, मंजिल नही। सम्प्रदाय सड़क हो सकती है, पथिक नही। सम्प्रदाय कई वने और मिट गये। लोकाशाह के पूर्व भी सुविहितो का सर्वथा अभाव नही था, पर आज अतीत का अंधकार उनका नामोनिशान तक निगल गया है। सम्प्रदाय क्षणभंगुर है, अशाश्वत है, धर्म शाश्वत एवं चिरस्थाई है। सम्प्रदाय के लिए धर्म की हत्या मत होने दो। संप्रदाय को धर्म का गला मत घोटने दो। धर्म का जीवन-रस शोषण करने वाली, धर्म-भवन को धरा ध्वस्त करने वाली टुकड़ियाँ यदि संप्रदाय कही जायेगी तो दुष्प्रदाय शब्द कोशों तक ही रह जायेगा। संप्रदाये वे तांगे हैं जिन्हे धर्म-घोड़े खीचे। आज तो घोड़ो के आगे ताँगे जोते जा रहे है। अपनी मनमानी शास्त्र-विरुद्ध या शास्त्र असमर्थित प्रवृत्ति प्ररूपणाओं की सुरक्षा के लिए संप्रदाय या संप्रदायो के समूह ढाल वने हुये है। जव तक धर्म एवं शास्त्र को सर्वोच्च स्थान न दिया जाकर संप्रदायो के पूर्वाग्रह चलते रहेंगे, धर्म-पौध का वपन एवं विकास संभव नही होगा।

श्रावक साधु वनते है, अतः साधु समाज श्रावक समाज का ही चित्र प्रस्तुत करने वाला होता है। आँखों देखते-देखते क्या का क्या हो गया है और होता ही जा रहा है। किस अदृश्य प्रभाव में हम वहे जा रहे है ? जरा किनारे आकर

सोचो ! ईमानदारी से शास्त्रों की अर्थ-गवेषणा करो !! धर्म की वलिवेदी पर संप्रदायो की आहुति दे दो !!! धर्माग्नि में डाल दो-संप्रदाय रूपी सोने को ! फिर देखो-वह तप कर कुन्दन बनकर निखरेगा, सारा कूडा-कचरा जल कर भस्मीभूत हो जायेगा ।

क्या हमें अन्तकृत नही वनना है ? यदि वनना है तो सीधा और साफ रास्ता पकडना होगा ।

"चलना उसी राह पर, जो सीधी और साफ हो ।
परवाह नही है चाहे, जमाना खिलाफ हो ॥"

धर्म पर, आगमो पर हमारी सम्प्रदाय या परम्परा हावी न होने पाए, इसका विवेक प्रत्येक निर्ग्रंथ-प्रवचन प्रेमी को रखने की पूरी आवश्यकता है। धर्मविहीन संप्रदाय और आगमविरुद्ध परम्परा का निर्माल्य किसी काम का नही है । आज तक के इतिहास से यदि इतना ही सवक भी ले लिया जाय तो संप्रदाय धर्मयुक्त होगा, जीताचार श्रुतव्यवहार युक्त होगा और अपनी-परायो सव की उन्नति होगी, जिनशासन की ज्योति जगेगी ।

महापुरुषो ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की प्रकृष्ट उन्नति कर कर्मो को नष्ट किया है, तभी तो उनके जीवन-प्रसंग आगमो मे गूथे गये है । वे जिस मार्ग पर चल कर मजिल तक पहुँचे, मुक्ति-मार्ग पर अकुटिल भाव से सभी साधको को गति करनी ही होगी ।

**प्रस्तुति परिचय**—पर्वाधिराज पर्युषण में श्री अन्तकृत

सूत्र के वाचन-श्रवण की प्राचीन परम्परा का निर्वाह आज भी किया जाता है। पूज्य संत-सतीवृंद के पावस-सान्निध्य से वंचित क्षेत्रो में श्रावक वर्ग द्वारा भी आठ दिनों तक धर्माराधना करवाने का उपक्रम गतिमान है।

श्री अन्तकृत सूत्र के प्रकाशन विविध संस्थानो द्वारा हुए है। पूज्य गुरुदेव पंडित रत्न श्री श्री १००५ श्री घेवरचन्दजी म. सा. 'वीरपुत्र' द्वारा गृहस्थावस्था में श्री आचारांग प्रथम श्रुतस्कंध, श्री दशवैकालिक, श्री उत्तराध्ययन, श्री भगवती सूत्र आदि आगमो के अतिरिक्त श्री अन्तकृतदशा सूत्र का भी हिंदी अनुवाद किया गया था जो सैलाना से अनेक वार प्रकाशित हुआ है।

पूज्य गुरुदेव वहुश्रुतगीतार्थ स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री समर्थमलजी म. सा. एवं उनके शिष्यों द्वारा समय-समय पर दिये गये पर्युपण प्रवचनों के आधार पर चार वर्ष पूर्व 'अन्तकृत विवेचन' नामक पुस्तक का प्रकाशन सैलाना से किया गया था।

प्रियदृढ़धर्मी सुश्रावक श्रीमान् धीगड़मलजी सा. गिरिया, जोधपुर का आदेश हुआ कि अन्तकृत सूत्र में सम्वन्धित पाठो के साथ ही 'अंतकृत विवेचन' समाहित कर दिया जाय ताकि व्याख्याताओं को सुगमता रहे। ऐसा ही करने का प्रयत्न किया गया है।

**प्रकाश-परिचय**—वहुश्रुतपुत्र पूज्य श्री १००५ श्री प्रकाशचन्दजी म. सा. ने पूज्य श्री समर्थ गुरुदेव के सान्निध्य

मे विपुल श्रुत-सम्पदा अर्जित की तथा जन-मन की अभिव्यक्ति है कि पूज्य गुरुदेव के स्वर्गवास हो जाने पर भी श्रुत प्रेमियो को प्रश्नो का यथोचित समाधान मिल जाता है ।

पूज्य श्री प्रकाशचन्दजी म. सा. का परिचय आज समाज को 'समर्थ श्रुत-पट्टधर' के रूप मे पर्याप्त प्राप्त हो चुका है । अत उनके विषय मे अधिक न कह कर प्रासंगिक रूप से इतना ही कहना है कि वे जिनशासन रथ को वहन करने मे सक्षम मारवाड़ के धोरी वृषभ है। आगम-दधि का मथन कर के तत्त्व नवनीत लुटाने वाले बाल-गोप है, शास्त्र-धनागार के संवर्द्धक एवं कुशल प्रहरी है ।

संवत् २०२५ के पाली चातुर्मास से पूज्यश्री समर्थ-सामर्थो की कृपा मुझ पर रही है। मै उन्मुक्त भाव से यह स्वीकार करता हूँ कि इस अनुवाद एवं विवेचन मे जो भी सत्यं शिव सुदरं है, वह सब उनका है । मेरे संग्रह मे जो कुछ भी है, उनके उत्तरो या प्रवचनो का है । हा, इतना अवश्य है कि क्षयोपशम की मंदता के कारण यदि कही कोई त्रुटि-स्खलना परिलक्षित हो तो वह अवश्य ही मेरी है और उस दोष-दायित्व से मुकरने की मेरी भावना नही है ।

मूलपाठ पूज्य गुरुदेव श्री वीरपुत्रजी म सा. द्वारा अनूदित प्रति के आधार से है । सूत्रांक १–२–३ सिर्फ सुविधा के लिए मेरी ओर से लगाये गये है ।

उपसंहार मे इतना ही कहना है कि हमारा चतुर्विध संघ एवं उसका प्रत्येक घटक जिनशासन की जाहोजलाली का

प्रयत्न करे, धर्म की जाहो-जलाली होगी तो संप्रदाय का यश-सौरभ पहले ही फैलेगा। गेहूँ के लिए खेती होगी तो घास-फूस मिले बिना कैसे रहेगा ? आज जो टकराव एवं संघर्ष धर्म और संप्रदाय में, परम्परा और आगम में होता दिख रहा है, उसकी परिसमाप्ति हेतु हम सब ईमानदारी से उद्यत बनें, यही अभ्यर्थना है। धर्म एव धार्मिकों की किंचित् मात्र भी अविनय आशातना के भाव नहीं रहते हुए भी कोई अवांछनीय हो तो आत्मीयता भरे पाठक कृपापूर्वक सूचन करें, ऐसा करके वे अपने कर्तव्य पालन के साथ मुझ पर असीम अनुग्रह करेंगे।

श्रावण शुक्ला एकादशी
२२।८।८०

संघ चरणरज—
वी. घीसूलाल पितलिया
सिरियारी



* नमो सिद्धाणं *

# अंतगडदसा सूत्र

## प्रथम वर्ग

### गौतमकुमार नामक प्रथम अध्ययन

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं चंपाए णयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे णामं चेइए होत्था वणसंडे वण्णओ। तीसे णं चंपाए णयरीए कोणिए णामं राया होत्था, महया हिमवंत वण्णओ।

अर्थ--इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे मे (अंग देश की राजधानी) चंपा नामक नगरी थी, जिसकी ऋद्धि-समृद्धि वर्णन योग्य थी। चंपा नगरी के उत्तर-पूर्व दिशा भाग (ईशान कोण) मे पूर्णभद्र नाम का यक्षायतन था जो चारो ओर वनखंड से घिरा हुआ था। उस समय (श्रेणिक महाराज एवं चेलना

के अंगजात) कोणिक महाराज चंपा के शासक थे। विशेष वर्णन उववाई सूत्र से जान लेना चाहिए।

**२ तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज-सुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा णयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव समोसरिए। परिसा णिग्गया जाव पडिगया।**

अर्थ-(वीर प्रभु के पट्टधर-पंचम गणधर) आर्य सुधर्मा स्वामी स्थविर पाँच सौ मुनियो के साथ यथाक्रम से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, सुखपूर्वक विचरते हुए चंपा नगरी के पूर्णभद्र यक्षायतन में पधारे एवं यथोचित अवग्रह ग्रहण कर के, संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। भगवान् सुधर्मा स्वामी का आगमन जान कर परिषद् धर्म श्रवण के लिए उपस्थित हुई व धर्मश्रवण कर अपने स्थान लौट गई।

विवेचन--१-उत्तम आचारी, निरवद्य जीवी और निष्पाप जीवन वाले संतो के लिए 'आर्य' विशेषण का प्रयोग होता है। उत्तम कुल-शील वाले सद्गृहस्थो को भी आर्य कहा जाता है। जाति-आर्य, कुल-आर्य के साथ-साथ सुधर्मा स्वामी ज्ञानार्य, दर्शनार्य, चारित्रार्य भी थे।

२-सुधर्मा स्वामी का जन्म कोल्लाग सन्निवेश मे वीर-निर्वाण से अस्सी वर्ष पूर्व हुआ। धम्मिल ब्राह्मण आपके पूज्य पिता थे तथा भद्दिला आपश्री की माता थीं। मध्यमा पावा के महासेन उद्यान मे गौतम स्वामी आदि के साथ ग्यारह गणधरो मे आपकी भी दीक्षा हुई थी। पचास वर्ष की अवस्था मे दीक्षित हुए, वीर-निर्वाण के बाद बारह वर्ष छद्मस्थ और आठ वर्ष केवली-पर्याय का पालन कर सौ वर्ष की उम्र में सिद्ध हुए

और मुक्त हुए। आपके गुणो का विशेष वर्णन श्री ज्ञाता सूत्र के प्रथम अध्ययन आदि मे उपलब्ध होता है। आप स्वय धर्म मे स्थिर थे तथा दूसरो को भी स्थिर करते थे। अत आपके लिए 'थेरे-स्थविर' विशेषण का व्यवहार हुआ है।

**३ तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अतेवासी अज्ज जबू जाव पज्जुवासमाणे एव वयासी-जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेण जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्स णं भंते ! अगस्स अतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

अर्थ-एक बार भगवान् सुधर्मा स्वामी के(पट्टधर शिष्य) अंतेवासी आर्य जंवू स्वामी को इस प्रकार जिज्ञासा हुई तव सुधर्मा स्वामी के (न अधिक नजदीक न अधिक दूर) समीप पधार कर वंदन-नमस्कार करके विनयपूर्वक जंबू स्वामी पूछने लगे-हे भगवन् ! धर्म की आदि करने वाले (धर्म तीर्थ के संस्थापक आदि णमोत्थुण मे कहे हुए सभी सद्गुणो के भण्डार) यावत् मोक्ष को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सप्तम अंग उपासकदशा सूत्र के जो भाव फरमाये, उन्हे आपके श्री मुख से श्रवण कर मै कृतार्थ हुआ। हे भगवन् ! आठवे अंग अंतगडदसा सूत्र मे भगवान् ने क्या भाव फरमाये है ?

**४ एव खलु जंबू ! समणेणं जाव सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता। जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ**

**वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसा समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?**

अर्थ–श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–इस प्रकार निश्चय ही हे जंबू ! धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवे अंग अन्तकृतदसा के आठ वर्ग (अध्ययनों के समूह) कहे है। श्री जंबू स्वामी ने प्रश्न किया–हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यावत् सिद्धि-स्थान संस्थित प्रभु ने श्री अन्तकृतदशा के आठ वर्गों की प्ररूपणा की है तो हे भगवन् ! प्रथम वर्ग मे कितने अध्ययन फरमाये है सो कहिए।

**५ एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—**

**गोयम समुद्द सागर, गंभीरे चेव होइ थिमिए य।**
**अयले कंपिल्ले खलु, अक्खोभ पसेणई विण्हू ॥१॥**

**जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–गोयम जाव विण्हू। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

अर्थ–सुधर्मा स्वामी ने जंबू स्वामी से कहा–हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवे अंग अन्तकृतदस के प्रथम

वर्ग मे निम्न दस अध्ययनो का निरूपण किया है–प्रथम अध्ययन मे गौतम कुमार का वर्णन है, दूसरे मे समुद्र, तीसरे अध्ययन मे सागर का वर्णन है, चौर्थ अध्ययन मे गंभीरकुमार, पांचवे अध्ययन मे स्तिमित कुमार का वर्णन है। छठे मे अचल, सातवें मे कम्पिल, आठवे मे अक्षोभ, नववे मे प्रसेनजित, दसवे मे विष्णुकुमार का वर्णन है।

श्री जंबू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा-हे भगवन्! यदि भगवान् महावीर स्वामी ने श्री अन्तकृतदशा के प्रथम वर्ग मे उपरोक्त दस अध्ययन फरमाये है, तो प्रथम अध्ययन मे भगवान् ने क्या भाव फरमाये है?

**६ एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था, दुवालस जोयणायामा णव जोयण-विच्छिण्णा धणवइ मइ-णिम्मया चामीगरपागाराणाणा-मणि पंचवण्ण कविसीसग परिमंडियासुरम्मा अलका-पुरी संकासा पमुइय-पवकीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।**

अर्थ–श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–हे जंबू! बावीसवे तीर्थंकर भगवान् अरहंत अरिष्टनेमि स्वामी के समय मे द्वारिका नगरी थी। उस द्वारिका की लम्बाई बारह योजन (अडतालीस कोस) थी, उसकी चौडाई नौ योजन (छत्तीस कोस) थी। धनपति–वेश्रमण–कुवेर की वुद्धि से उसका निर्माण हुआ था। स्वर्ण मय प्राकार एवं मणिरत्न खचित पंचरंगे कंगूरों से परिमंडित एवं सुरम्य द्वारिका नगरी अलकापुरी के सदृश

दिखाई देती थी। द्वारिका के निवासी प्रसन्न एवं मुदि होकर विविध क्रीड़ाये करते थे। अत द्वारिका प्रत्यक्ष देवलोक के समान ही दिखाई पड़ती थी। द्वारिका का विशिष्ट वैभव दर्शको के लिए चित्त प्रसन्नता का हेतु एवं दर्शनीय था। बार-बार देखने पर भी नयन अघाते नही थे। अपितु द्वारिका की समृद्धि जैसी कानो सुनी जाती, वैसी ही आँखों से दिखाई भी पड़ती थी।

**७ तीसे णं बारवईए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं रेवयए णामं पव्वए होत्था, वण्णओ तत्थ णं रेवयए पव्वए णंदणवणे णामं उज्जाणे होत्था वण्णओ। सूरप्पिए णामं जक्खाययणे होत्था, पोराणे से णं एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते, असोगवरपायवे।**

अर्थ—उस द्वारिका नगरी के ईशान कोण के दिशा-भाग मे रैवतक पर्वत था, जो बड़ा ही रमणीय एवं मनोहर था उस रैवतक पर्वत की तलहटी में नंदनवन नामन सुदर बगीचा था। उस बगीचे में सूरप्रिय नामक यक्ष का आयतन (स्थान) था, जिसकी प्राचीनता आदि गुणो से प्रसिद्धि थी। वह यक्षायतन चारों ओर से वृक्ष-समूहो से घिरा हुआ था तथा वहां एक विशाल श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था।

**८ तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे णासं वासुदेवे राया परिवसइ, महयाहिम्मवंत रायवण्णओ। से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेवपामो-**

क्खाणं पंचण्हं महावीराणं पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं महासेणपामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्ग-साहस्सीणं वीरसेणपामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं उग्गसेणपामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं-रूप्पिणीपामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं, अणंग-सेणापामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए णयरीए अद्धभरहस्स य समत्तस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।

अर्थ–उस द्वारिका नगरी मे कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उनमे महान् राजा योग्य गुणो का भण्डार था। कृष्ण महाराज के–समुद्रविजयप्रमुख दस दशार्ह (पूज्य पुरुप) थे, बलदेव प्रमुख पांच महावीर थे, प्रद्युम्न प्रमुख साढे तीन करोड़ कुमार थे। अपराजेय दुर्दान्त शूरवीरो मे शाम्ब प्रमुख साठ हजार सुभटो की गिनती थी। महासेन आदि छप्पन हजार सेनापति थे, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हजार वीर थे। उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा श्री कृष्ण के आज्ञाधीन थे। रुक्मिणि प्रमुख सोलह हजार रानियाँ थी, अनंगसेना आदि अनेको गणि-कायें थी। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ऐश्वर्यशाली नागरिक, नगररक्षक, सीमान्त राजा, सेठ सेनापति, सार्थवाहो के समूह थे।

वैताढ्य पर्वत पर्यन्त अर्द्ध भरत के तीन खण्डो में श्री

कृष्ण का एकछत्र निष्कंटक साम्राज्य था।

**विवेचन**—(१) बलदेव वासुदेव आदि के लिए भी पूज्य दस पुरुषो को दशार्ह कहा गया है जिनमे समुद्रविजयजी तो त्रैलोक्य पूज्य भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी के पिता थे।

(२) अमुक प्रकार का शौर्य प्रदर्शित करने पर जिस प्रकार आज-कल सैनिको को वीर चक्र, महावीर चक्र, परमवीर चक्र आदि प्रदान किये जाते है, वैसे ही वीर, महावीर आदि के विभाग श्री कृष्ण महाराज के समय मे होने की संभावना है।

(३) वसुदेव की देवकी रानी से कृष्ण महाराज एवं रोहिणी से बलदेव का जन्म हुआ था। प्रद्युम्नकुमार रुक्मिणि के अगजात थे तथा शाम्ब की माता का नाम जाम्बवती था।

(४) सेना की टुकड़ियाँ 'रेजिमेन्ट्स' को 'बलवग्ग—बलवर्ग' कहा जाता है।

**६ तत्थ णं बारवईए णयरीए अंधगवण्ही णामं राया परिवसइ, महया हिमवंत वण्णओ। तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ। तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महब्बले—**

**सुमिणदंसणकहणा, जम्म बालत्तणं कलाओ य।**
**जोव्वण-पाणिग्गहणं, कंता पासाय भोगा य ॥१॥**

**णवरं गोयमो णामेणं, अट्ठण्हं रायवरकण्णाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ।**

अर्थ—उसी द्वारिका मे (यादवों के ज्येष्ठ स्थानीय)

ंधकवृष्णि नामक राजा थे। उनके धारिणी नामक रानी ी। राजा-रानी का वर्णन जान लेना चाहिए। एक बार श्री ज्ञातासूत्र प्रथम अध्ययन मे वर्णित गुणो वाली) तथा-कार की उत्तम शय्या पर सोई हुई धारिणी रानी ने एक ाहान् स्वप्न देखा, रानी जागी और पति के वासगृह मे जाकर वप्न निवेदन किया। राजा ने प्रात. स्वप्नपाठको को बुलाया, थासमय गौतमकुमार का जन्म हुआ। सुखपूर्वक लाड़-प्यार ़ साथ जब गौतमकुमार विद्यार्जन के योग्य हुए तब पढने ाए। सागोपाग वहत्तर कला का ज्ञान किया। वय प्राप्त हो ाने पर सदृश रूप-लावण्य आदि उत्तम गुणो से युक्त आठ ्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ उनका विवाह हुआ। पिता द्वारा ी गई आठ-आठ वस्तुओ को गौतमकुमार ने आठो पत्नियो े वांट दिया। इत्यादि सारा वर्णन (भगवती सूत्र शतक ११ उद्देशक ११ वर्णित) महाबल कुमार के समान जान लेना चाहिए। इस प्रकार गगन-चुम्वी भव्य भवनो मे गौतमकुमार मानवीय सुखो का अनुभव करते हुए काल यापन करने लगे।

**१० तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी आइगरे जाव विहरइ। चउव्विहा देवा आगया। कण्हे वि णिग्गए। तए णं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए। धम्मं सोचा णिसम्म जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि।**

अर्थ–तदन्तर धर्मावतार यावत् मोक्ष प्राप्ति की अभि-लाषा वाले तीर्थंकर देव अर्हंत अरिष्टनेमिनाथ जनपद को चरण-रज से पावन करते हुए द्वारिका मे समवसृत हुए। धर्मकथा सुनने के लिए जनसमूह उमड़ पड़ा। भवनवासी, व्यं-तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवो का आगमन हुआ। कृष्ण महाराज भी पधारे। गौतमकुमार ने जनमेदिनी को दिशाविशेष मे जाते देखकर कंचुकी पुरुष से प्रयोजन पूछा तथा भगवान् का आगमन जान गौतमकुमार भी प्रभु की सेवा मे, मेघकुमार की भाति पर्युपासना करने गए। भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया। सुनकर गौतमकुमार ने वंदना नमस्कार कर निवेदन किया– "हे भगवन् ! मै निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करता हूँ। यह परम पावनी जिनवाणी मुझे इच्छित एवं प्रतीच्छित है। जैसा आपने फरमाया वह सत्य, तथ्य एवं अवितथ है। संशय–शंका को लेश मात्र भी स्थान नही है। यह संसार जल रहा है। जरा-मरण की लाल-लाल लपटे उठ रही है। घर में आग लगने पर जैसे बुद्धिमान गृहस्थ अल्प भार वाली बहुमूल्य वस्तुये निकाल लेता है, वैसे ही मै आत्मा रूपी भाण्ड की रक्षा करना चाहता हूँ। विशेष यह है कि मैं अपने माता-पिता से पूछ कर देवानुप्रिय के समीप प्रव्रजित होना चाहता हूँ।" प्रभु ने फरमाया–'हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो, धर्म कार्य मे प्रतिबंध मत करो।'

**११ एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए, इरियासमिए जाव इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।**

अर्थ---भगवान् के समीप से गौतमकुमार अपने माता-पिता के समीप आए तथा प्रव्रज्या की अनुज्ञा मांगी। माता-पिता ने अनुकूल-प्रतिकूल युक्तियो से संसार मे रखने की कोशिश की, पर गौतमकुमार मेघकुमार की भाति उत्तर देते रहे यावत् गौतमकुमार को आज्ञा दी गई। ठाठ-बाट से दीक्षा हुई। प्रभु ने संयम-विधि सिखलाई। अब गौतम अणगार यतनापूर्वक चलने वाले–ईर्यासमित हो गए, विवेक पूर्वक भाषण करने वाले होने से भाषासमित हो गए। पाँचो समिति तीनो गुप्ति रूप प्रवचन-माता के आराधक हो गये। उनकी लेश्याएँ संयम मे ही रमण करने लगी, अधिक क्या कहा जाय, जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति मे वे निर्ग्रंथ-प्रवचन को सामने रख कर विचरने लगे। विशेष वर्णन श्री उववाई आदि आगमो से जानना चाहिये।

**१२ तए णं गोयमे अणगारे अण्णयाकयाइ अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराण अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।**

अर्थ–निर्ग्रंथ-प्रवचन को सर्वस्व समर्पण करने वाले उन गौतम अणगार ने भगवान् अरिष्टनेमि के यथार्थ संयमी, तथा-रूप स्थविर भगवंतो के समीप सामायिक आदि ग्यारह अंगो का शास्त्राध्ययन किया। इतना ही नही स्वाध्याय के साथ-साथ उपवास, बेला, तेला, चौला यावत् अठाई, अर्द्ध मासखमण, मासखमण आदि विविध तप साधना भी चलती रही।

**विवेचन**—धर्मकथानुयोग मे वर्णित जीवन चरित्रो में प्र
साधक के दो महत्वपूर्ण पहलुओ पर हमारा ध्यान जाना चाहिए
उन्होने क्या अध्ययन किया ? २ उनकी तप साधना क्या रही ?
रोक्त वर्णन से यह फलित है कि प्राचीन काल में हमारा श्रमण-स
ज्ञान-ध्यान एव तपस्या मे मग्न रहता था।

**१३ तएणं अरहा अरिट्ठणेमी अण्णया कयाइं बा
वईओ णयरीओ णंदणवणाओ उज्जाणाओ पडि
क्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विह
विहरइ।**

अर्थ—किसी समय अर्हत अरिष्टनेमि द्वारिका के नंदन
उद्यान से विहार करके बाहर जनपद मे विचरने लगे।

**१४ तएणं से गोयमे अणगारे अण्णयाकयाइं जे
अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता,अ
अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करि
वदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इच्छा
णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासिय भिक
पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं जहा खद
तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता गुणरय
वि तवोकम्मं तहेव फासेइ, णिरवसेसं एवं जहा खंद
तहा चिंतइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुं
दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परिया
जाव सिद्धे।**

अर्थ–किसी समय गौतम अणगार भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामीजी के समीप आए। दोनो हाथ जोड़ कर अपने दाहिनी तरफ से बॉयी ओर मस्तक पर तीन आवर्तन रूप आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वंदना-नमस्कार कर प्रभु से निवेदन किया–हे प्रभो ! आपकी अनुज्ञा हो तो मैं (भिक्षु की बारह प्रतिमाओं मे से)प्रथम मासिकी भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने अनुज्ञा फरमाई। तब गौतम अनगार ने श्री भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ वर्णित) स्कंधक अणगार के समान प्रथम मासिकी भिक्षु-प्रतिमा की सम्यक् आराधना, पालना और स्पर्शना की। प्रथम प्रतिमा की आराधना करके दूसरी भिक्षुप्रतिमा के आराधना की आज्ञा मागी। इस प्रकार अनुक्रम से (श्री दशाश्रुतस्कंध अष्टम दशा में वर्णित) बारह भिक्षु-प्रतिमाओं का गौतम अणगार ने सम्यक् परिपालन किया। इतना ही नही (श्री ज्ञाता सूत्र अध्ययन १ वर्णित) गुण-रत्न संवत्सर तप कर्म की भी स्कंधक अनगार के समान भलीभाति आराधना की।

विपुल तपश्चर्या से गौतम अणगार का शरीर क्षीण हो गया, फिर भी आत्म तेज से वे दैदीप्यमान थे। एक बार धर्म जागरणा में उन्होने विचार किया–'अब मुझे अपने धर्मगुरु धर्मोपदेशक धर्माचार्य भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी से आज्ञा लेकर, साथ वाले संत-सतियों को खमाकर, शत्रुजय पर्वत पर संलेखना करना उचित है।' दूसरे दिन प्रभु से आज्ञा लेकर, तथा-रूप के वैयावृत्यकारी स्थविरो के साथ, धीरे-धीरे शत्रुञ्जय

पर्वत पर आरोहण किया। पृथ्वी शिलापट्टक की प्रतिलेखना प्रमार्जना की। एक मास तक आहार की अभिलाषा रहित-निराहार रहकर, वे सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गये। जिस कार्य के लिए संयम स्वीकार किया था, स्नान आदि का त्याग किया था, उस कार्य को उन्होने सिद्ध कर लिया।

**विवेचन**—यहाँ गौतम अणगार द्वारा 'द्वादश भिक्षु प्रतिमाओ' व 'गुणरत्न संवत्सर तप कर्म' का उल्लेख हुआ है। प्रासगिक परिचय आवश्यक होने से यहाँ कुछ उहापोह किया जाता है—

प्रश्न—मासिकी भिक्षु-प्रतिमा रूप पहली प्रतिमा मे किन-किन नियमो का पालन किया जाता है ?

उत्तर—शारीरिक संस्कार एवं देह ममत्व त्याग कर प्रतिमाधारी मुनि देव-मनुष्य-तिर्यंच के उपसर्गों को तितिक्षापूर्वक सहता है। श्रमण, भिखारी, पशु, ब्राह्मण आदि को अंतराय नही देता है। अज्ञात कुल से गोचरी करता हुआ एक व्यक्ति के विभाग में आए भोजन से एक दत्ती आहार की व एक दत्ती पानी की ग्रहण करता है। गर्भवती, स्तनपायी आदि से भिक्षा नही लेता। जिस दाता का एक पैर देहली के भीतर व एक बाहर हो, उसी से भिक्षा ग्रहण करता है। दिन के आदि, मध्य व अंत-तीन विभाग करके किसी एक भाग मे ही गौचरी जाता है, चाहे मिले या नही। पेटा, अर्द्धपेटा, गौमूत्रिका, पतंगवीथिका, शंखावर्ता, गतप्रत्यागता, इन छह प्रकारो मे से गौचरी करता है। जहाँ जान पहिचान हो—वहा एक रात्रि, अन्यत्र दो रात्रि से अधिक नही ठहर सकता। अधिक ठहरने की अवधि जितना ही छेद या तप का प्रायश्चित्त अधिक ठहरने पर आता है। आहारादि याचने के लिए, मार्ग पूछने के लिए, स्थान आदि की आज्ञा लेने के लिए, प्रश्नो का उत्तर देने के लिए क्रमशः याचनी, पृच्छनी अनुज्ञापनी व पुट्ठवागरणी—ये चार प्रकार की भाषा बोलना उन्हे कल्पता है,

अन्यथा प्राय मौन ही रखता है । चारो ओर बाग वाले अधोआरामगृह अथवा ऊपर से ही ढका अधोविकट गृह या वृक्ष के नीचे बने स्थान मे ही रहना कल्पता है । तीन प्रकार के सस्तारक ग्रहण कर सकता है-पृथ्वी शिला, काष्ठ शय्या और पहले से विछा संस्तारक। आने-जाने वालो के प्रति उपेक्षा भाव रख कर अपने ज्ञान-ध्यान मे लीन रहता है। उपाश्रय मे आग लग जावे तो भी निर्भयतापूर्वक अपने ध्यान मे लीन रहता है। कोई प्राणान्त करने को तत्पर हो तो भी उसे पकडता नही है। पाँव मे ककर-काटा लग जाय तथा मच्छर आदि काटे तो भी वाधा नही देता है। सूर्यास्त के वाद एक कदम भी नही चलता है। हिंसक पशुओ से डर कर पथ परिवर्तन नही करता है। इन्द्रिय प्रतिकूल सर्दी, गर्मी आदि से वचने के लिए अन्यत्र गमन नही करता है। विशेष वर्णन के लिए सैलाना से प्रकाशित श्री भगवती सूत्र भाग १ पृ ४२५ देखना चाहिये।

प्रश्न–वारह भिक्षु-प्रतिमाओ को वहन करने मे कुल कितना समय लगता है ?

उत्तर–चूकि प्रतिमाधारी कही भी एक-दो रात्रि से अधिक नही ठहर सकते। अत यह तो स्पष्ट ही है कि प्रतिमा धारण ऋतुवद्ध (शेष) काल के आठ महीनो मे ही हो सकता है। एक के वाद दूसरी, तीसरी इस प्रकार अनुवद्ध प्रतिमा धारण का भी वर्णन गोतम, स्कंधक आदि के वर्णन मे हुआ है। अतः सात प्रतिमाओ मे सात मास, आठवी नववी दसवी में ७×३=२१ दिन, ग्यारहवी प्रतिमा अहोरात्रि की वेले के तप से तथा वारहवी प्रतिमा एक रात्रि की वेले को वढा कर तेले के तप मे होती है। इस प्रकार ७ मास २३ दिन मे प्रतिमा का आराधन होता है।

प्रश्न–फिर दूसरी द्विमासिको यावत् सातवी सप्तमासिकी क्यो कही गई ?

उत्तर–कालमान की अपेक्षा उपरोक्त संज्ञा नही समझना, सप्त-मासिकी का अर्थ 'सातवी मासिकी प्रतिमा' करना चाहिये।

प्रश्न—दूसरी आदि प्रतिमाओ की पहली की अपेक्षा क्या विशेषता है ?

उत्तर—आगे की प्रतिमाओ मे दत्तियों की संख्या बढ जाती है तथा रात्रि मे अमुक आसनो से रहना होता है। विस्तृत वर्णन के लिए श्री दशाश्रुतस्कंध की आठवी दशा देखनी चाहिये। प्रत्येक साधु को प्रतिमावहन की अनुज्ञा नही दी जाती है। संहनन-धृति युक्त, अतिशय-पराक्रमी, संयम मे तल्लीन, शुद्ध आत्मा—जिसे गुरु की अनुज्ञा प्राप्त हो गई हो—ऐसा महान् बल सपन्न साधु ही प्रतिमा धारण कर सकता है। साध्वियाँ इन प्रतिमाओ को धारण नही कर सकती। वैसे तो कम से कम उनतीस वर्ष की वय पर्याय, कम से कम बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय, नवं पूर्व की तीसरी आचार वस्तु तक का ज्ञान तथा गच्छ में रह कर प्रतिमाओ का पूर्वाभ्यास आदि विशेषताएँ होना अनिवार्य है।

प्रश्न—गुणरत्न-संवत्सर तप की विधि क्या है ?

उत्तर—गुणरत्न-संवत्सर तप की आराधना मे सोलह महीने लगते हैं, इसमे तपस्या के चार सौ सात दिन तथा पारणे के तिहत्तर दिन लगते है। तपस्या के दिन, दिन में उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापना एवं रात्रि मे प्रावरण रहित हो कर वीरासन से स्थिर रहना पड़ता है। पहले महीने मे निरन्तर उपवास, दूसरे में बेले-बेले इस प्रकार सोलह महीने मे सोलह-सोलह की तपस्या करनी होती है। नीचे तालिका में इसी तप का स्वरूप दिया गया है। तीसरे महीने व पन्द्रहवे महीने में दिन ज्यादा लगे हैं तो छठे व तेरहवे महीने में दो-दो दिन कम हैं। ग्यारहवे महीने के छह दिन की पूर्ति सातवे से, दसवे के तीन दिन की पूर्ति आठवे से, बारहवे के बचे चार दिन सोलहवे महीने में मिला देने से बराबर चार सौ अस्सी दिन में आराधना होती हैं, जो तालिका से स्पष्ट है।

| महीना | तप व तप सख्या | तप के दिन | पारणे के दिन | योग |
|---|---|---|---|---|
| पहला | १५ उपवास | १५ | १५ | ३० |
| दूसरा | १० वेला | २० | १० | ३० |
| तंसरा | ८ तेला | २४ | ८ | ३२ |
| चौथा | ६ चोला | २४ | ६ | ३० |
| पाँचवाँ | ५ पचोला | २५ | ५ | ३० |
| छठा | ४ छह | २४ | ४ | २८ |
| सातवाँ | ३ सात | २१ | ३ | २४ |
| आठवाँ | ३ अठाई | २४ | ३ | २७ |
| नववाँ | ३ नव | २७ | ३ | ३० |
| दसवाँ | ३ दस | ३० | ३ | ३३ |
| ग्यारहवाँ | ३ ग्यारह | ३३ | ३ | ३६ |
| वारहवाँ | २ वारह | २४ | २ | २६ |
| तेरहवाँ | २ तेरह | २६ | २ | २८ |
| चौदहवाँ | २ चौदह | २८ | २ | ३० |
| पन्द्रहवाँ | २ पन्द्रह | ३० | २ | ३२ |
| सोलहवाँ | २ सोलह | ३२ | २ | ३४ |
| योग | | ४०७ | ७३ | ४८० |

विशेष जानने के लिए श्री ज्ञातासूत्र प्रथम अध्ययन दृष्टव्य है। गुणरत्न-सवत्सर तप की एक ही परीपाटी होती है। गजसुकुमार व अर्जुन अनगार के अतिरिक्त अन्तकृत के सभी पुरुप नायको ने द्वादश भिक्षु प्रतिमाओ व गुणरत्न-सवत्सर तप का आराधन किया था, ऐसी धारणा है।

**एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। पढमं अज्झयणं समत्तं॥**

अर्थ–श्री सुधर्मा स्वामी प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का उपसंहार करते हुए फरमाते हैं–हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन के ये भाव फरमाये है। श्रीजंबू स्वामी ने विनयपूर्वक कथन स्वीकार किया।

॥ प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन पूर्ण ॥

## प्रथम वर्गः शेष नौ अध्ययन

**१ एवं जहा गोयमो तहा सेसा वि वण्ही पिया, धारिणी माया समुद्दे, सागरे, गंभीरे, थिमिए, अयले कंपिल्ले, अक्खोभे, पसेणई, विण्हुए–एए एगगमा। पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।**

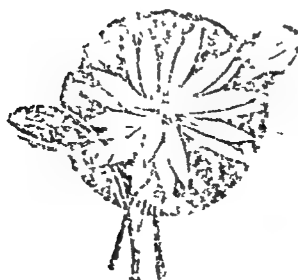
अर्थ––श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है––हे आयुष्मान् जंबू ! जिस प्रकार गौतमकुमार के माता-पिता का नाम अंधक वृष्णि एवं धारिणी था, वैसे ही शेष नौ भी गौतमकुमार के

सगे भाई थे। समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कंपिल्ल, अक्षोभ, प्रसेनजित, विष्णु—इन नौ का ही सरीखा वर्णन जानना चाहिए। सभी ने अरिष्टनेमि प्रभु के समीप दीक्षा ली। ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। बारह भिक्षु-प्रतिमाओं की पालना की। गुणरत्न-संवत्सर तप कर्म की आराधना की। मासिकी संलेखना से मुक्ति प्राप्त की। बारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय का पालन किया।

**विवेचन**—शंका—गौतमकुमार के पिता का नाम तो अंधकवृष्णि बताया गया, किंतु शेष नौ के पिता 'वृष्णि' है, फिर इन्हे सगे भाई बताने का क्या आधार है ?

समाधान—यद्यपि प्रथम वर्ग के द्वितीय अध्ययन मे 'वण्ही पिया' लिखा है तो भी एक ही वर्ग होने से तथा नाम साम्य नही होने से जैसे 'भामा' के द्वारा 'सत्यभामा' का ग्रहण होता है, वैसे ही 'वृष्णि' शब्द से 'अंधकवृष्णि' का ग्रहण किया जाता है। तथा दसो को सगा भाई मानने की निर्विवाद परम्परागत धारणा है।

॥ प्रथम वर्ग समाप्त ॥



# द्वितीय वर्ग

१ जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

अक्खोभे सागरे खलु, समुद्द हिमवंत अयलणामे य।
धरणे य पूरणे वि य, अभिचंदे चेव अट्ठमए॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए वण्ही पिया धारिणी माया। जहा पढमो वग्गो तहा सव्वे। अट्ठ अज्झयणा गुणरयणतवोकम्मं सोलस वासाइं परियाओ सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धा।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ इति दोच्चो वग्गो अट्ठ अज्झयणा समत्ता ॥

अर्थ—श्री जंबू स्वामी पूछते है—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अन्तकृतदसांग के प्रथम वर्ग के ये भाव फरमाये, तो दूसरे वर्ग में कितने अध्ययनों की प्ररूपणा की है ?

श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है–हे जंवू ! द्वितीय वर्ग मे प्रभु ने आठ अध्ययन फरमाये है–अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवंत, अचल, धरण, पूरण, अभिचंद्र । उस समय द्वारिका नगरी थी, वृष्णि पिता एवं धारिणी माता के आठो ही पुत्र थे । इन सभी ने भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामीजी के सान्निध्य में संयम स्वीकार किया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया । बारह भिक्षु-प्रतिमाये व गुण-रत्न-संवत्सर तप-कर्म की आराधना की। मासिकी संलेखना से कषायो एवं शरीर को क्षीण किया । शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए । अन्तर यही है कि प्रथम वर्ग के चरित्र-नायकों की संयम-पर्याय बारह वर्ष की थी, द्वितीय वर्ग के आठो नायक सोलह वर्ष की प्रव्रज्या-पर्याय को पाल कर परिनिवृत्त हुए ।

इस प्रकार हे जंवू ! द्वितीय वर्ग में प्रभु ने उपरोक्त भाव फरमाये है सो तुम्हे कहे। विनयमूर्ति श्री जंबू स्वामी ने वंदना नमस्कार कर कहा–हे प्रभु ! आपने जो भाव फरमाए, वे सत्य है ।

॥ द्वितीय वर्ग समाप्त ॥



# तृतीय वर्ग : प्रथम अध्ययन

## अनीकसेन

१ जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—१ अणीयसेणे २ अणंतसेणे ३ अजियसेणे ४ अणिहयरिउ ५ देवसेणे ६ सत्तुसेणे ७ सारणे ८ गए ९ सुमुहे १० दुम्मुहे ११ कूवए १२ दारुए १३ अणादिट्ठी।

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—अणीयसेणे जाव अणादिट्ठी। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

अर्थ—जंबू स्वामी ने पूछा—द्वितीय वर्ग मे वर्णित भाव सुने। तीसरे वर्ग में भगवान् महावीर स्वामी ने क्या भाव फरमाये है ?

श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—भगवान् ने तीसरे

वर्ग के तेरह अध्ययनो की निरूपणा की है–अनीकसेन, अनंत-सेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन, शत्रुसेन, सारण, गज-सुकुमार, सुमुख, दुर्मुख, कूपक, दारुक एवं अनादृष्टि ।

जंबू स्वामी ने प्रतिपृच्छा की–हे भगवन् ! तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रभु ने फरमाये है, तो प्रथम अध्ययन मे क्या भाव है, सो कृपापूर्वक कथन करिए ।

**२ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णामं णयरे होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धे वण्णओ । तस्स णं भद्दिलपुरस्स णयरस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए सिरीवणे णामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ । जियसत्तु राया । तत्थ णं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा । तस्स णं णागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसेणे णामं कुमारे होत्था, सुकुमाले जाव सुरूवे पंचधाई परिक्खित्ते, तं जहा—खीरधाई, मज्जणधाई, मंडणधाई, कीलावणधाई अंकधाई—जहा दढपइण्णे जाव गिरिकंदरमल्लीणेव चंपगवर-पायवे सुहं सुहेणं परिवड्ढइ ।**

अर्थ—श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है—हे जंबू ! उस समय ऋद्धि समृद्धि से युक्त भद्दिलपुर नामक नगर के ईशान-

कोण में श्रीवन नामक रमणीय उद्यान था। भद्दिलपुर मे जि
शत्रु राजा था । वहाँ महान् धनशाली एवं किसी से पराभू
नही होने वाला नाग नामक गाथापति रहता था । नाग के
पत्नी सुलसा सुकुमाल एवं सुरूपा थी । उनके अनीकसेन नाम
कुमार था । वह दूध पिलाने वाली, स्नान कराने वाली, गह
आदि पहना कर शृंगार कराने वाली, खेल खिलाने वाली त
गोद मे लेने वाली—इन पाँच धायमाताओं से घिरा हु
(श्री उववाई सूत्र वर्णित) दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के समान वैसे
बड़ा हो रहा था जैसे पर्वत की गुफा में चंपक वृक्ष निराबा
बढ़ता है ।

**३ तए णं तं अणीयसेणं कुमारं साइरेगं अट्ठवा
जायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जा
यावि होत्था । तए णं तं अणीयसेणं कुमारं उम्मुकबाल
भावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसयाणं सरिसव्वया
सरिसत्तयाणं सरिसलावण्ण-रूवजोव्वण-गुणोववेयाण
सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भव
कण्णगाणं एगदिवसे पाणिं गिण्हावेंति ।**

अर्थ—अनीकसेन कुमार को साधिक आठ वर्ष का होने प
माता-पिता द्वारा कलाचार्य के पास विद्यार्जन करने भेजा ग
तथा कलायें सीखाई गई । बाल भाव बीत जाने से यौवन
प्राप्त होने पर एक ही दिन श्रेष्ठ बत्तीस श्रेष्ठी पुत्रियां
अनीकसेन का विवाह हुआ जो उसके अनुकूल वय वा

थी, समान त्वचा वाली थी, रूप-लावण्य-यौवन तथा सुशीलता आदि श्रेष्ठ गुणो से युक्त थी।

**४ तए णं से णागे गाहावई अणीयसेणस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा—बत्तीसं हिरण्ण-कोडीओ जहामहब्बलस्स जाव उप्पिंपासायवरगए-फुट्ट-माणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।**

अर्थ—अनीकसेन के पिता नाग गाथापति ने अनीकसेन को बत्तीस करोड़ रजत, स्वर्ण आदि विविध वस्तुये——महाबल के समान दी, जिन्हे अनीकसेन ने अपनी पत्नियो को बाँट दिया। गगन-चुम्बी उत्तम प्रासादो में मृदंगो के मस्तक फूटते थे ऐसे उत्तम नृत्य-गीत आदि विविध आमोद-प्रमोदो मे इद्रिय-सुखो का आस्वादन करते हुए अनीकसेन रह रहे थे।

**५ तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी जाव समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ परिसा णिग्गया। तए णं तस्स अणीयसेणस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा णवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। वीसं वासाइं परियाओ। सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे।**

**एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव सपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झय-णस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।**

अर्थ---अन्यदा भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी का द्वारि॰ आगमन हुआ। गौतमकुमार की तरह प्रभु दर्शनार्थ जाते हु लोगों के शब्द सुन कर अनीकसेन भी सेवा मे गए, वैरा हुआ-संयम स्वीकार किया। विशेष यह कि चौदह पूर्वों क अध्ययन किया। वीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया एक मास की संलेखना करके शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्ध-बु और मुक्त हुए।

हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन के ये भाव फरमाये है।

**॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥**

## तृतीय वर्गः दो से छह तक पांच अध्ययन

**१ जहा अणीयसेणे एवं सेसावि अणंतसेणे अजियसेण अणिहयरिउ देवसेणे-सत्तुसेणे छ अज्झयणा एगगमा बत्तीसाओ दाओ वीसं वासाइं परियाओ चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जंति, जाव सेत्तुंजे सिद्धा। छट्ठमज्झयणं समत्तं ॥**

अर्थ-अनीकसेन के समान शेष पांच भाईयो---अनंतसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन एवं शत्रुसेन का सरीखा वर्णन जान लेना चाहिए। प्रत्येक का वत्तीस श्रेष्ठ कन्याओ से विवाह आदि वर्णन ज्ञातव्य है। सभी ने बीस वर्ष की सरीखी प्रव्रज्या पाली, मासिकी संलेखना से सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए।

**॥ छह अध्ययन समाप्त ॥**

१—जइ णं भंते ! उक्खेवो सत्तमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए जहा पढमे, णवरं वसुदेवे राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, सारणे कुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दस पुव्वाइं, वीसं वासाइं परियाओ, सेसं जहा गोयमस्स, जाव सेत्तुंजे सिद्धे।

॥ सत्तम अज्झयणं समत्तं ॥

अर्थ सातवे अध्ययन का प्रारंभ—द्वारिका नगरी मे वसुदेव राजा की धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा, सारण कुमार का जन्म, कलार्जन, पचास श्रेष्ठ राजकन्यायो से विवाह, प्रव्रज्या, चौदह पूर्वो का अध्ययन, वीस वर्ष की दीक्षा पालकर यावत् मासिकी संलेखना से सिद्ध वुद्ध और मुक्त हुए।

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

## तृतीय वर्ग: अष्टम अध्ययन

### गजसुकुमार

१—जइ णं भंते ! उक्खेवओ अट्ठमस्स। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमे जाव अरहा अरिट्ठणेमी सामी समोसढे।

अर्थ—तृतीय वर्ग के अष्टम अध्ययन का प्रारम्भ करते हुए भगवान् सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—हे आयुष्मान् जंबू ! उस समय में विश्ववंद्य-अर्हत अरिष्टनेमिनाथ प्रभु का द्वारिका

वयासी—इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह। तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति।

अर्थ–उन छहो मुनियो ने जिस दिन दीक्षा स्वीकार की–घर-गृहस्थी का त्याग कर अणगार वृत्ति धारण की, उसी दिन उन्होने भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी को वंदना-नमस्कार कर निवेदन किया–हे भगवन् ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त होने पर हम छहो मुनि यावज्जीवन निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए विचरना चाहते है। भगवान् ने अनुज्ञा प्रदान की। प्रभु से अनुज्ञा प्राप्त करके उन छहो मुनियो ने यावज्जीवन के लिए बेले-बेले का तप स्वीकार कर लिया।

४–तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसिए सज्झायं करेंति जहा गोयमसामी जाव इच्छामो णं भंते ! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए णयरीए जाव अडित्तए। अहा सुहं देवाणुप्पिया ! तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति-णमंसंति,

**ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, भरित्ता ते अणगारे पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पडिविसज्जेइ ।**

अर्थ—उन छहो मुनियो मे से दो मुनियो का एक संघाडा (समृद्धि-वैभव की अपेक्षा) ऊँच, नीच, मध्यम कुलो में सामुदानिकी गौचरी करते हुए फिरता-फिरता वसुदेव राजा की देवकी रानी के महलो मे गया। दो अणगारो को आते देखकर देवकी देवी हृष्ट-तुष्ट हुई। चित्त मे आनंदित हुई। मन प्रीति से भर गया। मन मे परम शान्ति एवं शीतलता व्याप्त हो गई। हर्ष के अतिरेक से हृदय विकसित हो गया। प्रसन्न मन से बैठी हुई देवकी उठ खड़ी हुई। कुछ कदम सामने जाकर उनका स्वागत किया। वंदना-नमस्कार किया। वंदना-नमस्कार कर के मुनियों को रसोई घर में ले गई। (श्रीकृष्ण आदि के लिए बने परम पौष्टिक) श्रेष्ठ सिहकेसरा मोदको से थाल भरा एवं उन अनगार भगवंतो को वहरा दिया। वहरा कर पुन वंदना-नमस्कार कर मुनियो को विदाई दी।

**विवेचन**—गुरु-भक्ति पूर्वक दान देना प्रतिलाभ कहा गया है। तथारूप के श्रमण-निर्ग्रंथो को प्रासुक एपणीय भोजन आदि वहरा कर देवकी श्रावक के वारहवे व्रत की स्पर्शना करती है। दान देने से पूर्व, दान देते समय तथा वहराने के वाद भी वह प्रसन्न होती है। देवकी देवी की यह

अनुपम भक्ति आदर्श है। वह अन्य दास-दासियों को दान देने का कह कर स्वयं विपुल दान देती है। 'सिंहकेसरा मोदक सिंह के समान मोदको मे प्रधान होता है। श्रेष्ठ मेवे, शक्कर आदि मूल्यवान सा… से निष्पन्न यह मोदक उत्तम सहनन वाले वासुदेव आदि ही पचा … हैं। केसरा का अर्थ गर्दन के वाल होता है, फीणी की भांति जिन मो… का निर्माण सिंह के वालो सरीखे पिण्ड जैसा दिखे अथवा सिंह के वा… जैसे वर्ण वाले मोदक' इत्यादि वर्णन सिंहकेसरा मोदक के लि… मिलता है।

**६—तयाणंतरं च णं दोच्चं संघाडए बारवईए णय… रीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ।**

अर्थ—संयोगवश दूसरा संघाड़ा भी देवकी रानी के मह… मे आता है, देवकी रानी उसी प्रीति एवं भक्तिपूर्वक सि… केसरा मोदको से मुनियो को प्रतिलाभित कर विसर्जि… करती है।

**७—तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए णय… रीए उच्चणीय जाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता ए… वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमी… बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए णवजोयण… विच्छिण्णाए पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा… उच्चणीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरि… याए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, जण्णं ताइं चे… कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति।**

अर्थ—संयोग ऐसा बना कि तीसरा संघाड़ा भी प्रथ…

करता हुआ देवकी रानी के भवन में जा पहुँचा। देवकी रानी ने उन्हे भी प्रीति एवं भक्तिपूर्वक विपुल मोदको से प्रतिलाभित किया। छहो भाई सरीखी उम्र वाले एवं सरीखी शारीरिक संपदा वाले थे। अत देवकी रानी को यह ज्ञात नही हो सका कि पहले जो संघाडा आया, वह दूसरा था, फिर दूसरा आया, वह अन्य था तथा यह तीसरा संघाडा अन्य है। यदि उसे यह बात ज्ञात होती तब तो वह पूछती ही नही, पर उसे यही शंका हुई कि यही संघाडा दूसरी बार, तीसरी बार, फिर-फिर कर आ गया है। तब भी विवेकी देवकी ने भोजन वहराने के वाद ही निवेदन किया–हे देवानुप्रियो! कृष्ण वासुदेव की यह द्वारिका नगरी वारह योजन लम्बी एवं नव योजन चौड़ी है, अधिक क्या कहा जाय, प्रत्यक्ष देवलोक के समान है। यहाँ वडे-वडे सेठ-साहूकार एवं धनी-मानी सज्जन रहते है। क्या वे सभी मुनियो को दान देने मे इतने कृपण हो गये है कि हमारे संतो को एक ही घर मे गौचरी के लिए वार-वार आना पड़ता है?

**विवेचन**–पूज्य श्री समर्थमलजी म सा से अन्तकृत प्रवचनो मे इस प्रसग पर सुनने को मिलता कि मध्य के तीर्थकरो के शासन मे भी साधु-साध्वी एक घर को एक ही दिन मे अनेक वार नही फरसते थे। देवकी रानी धर्म की जानकार थी। भगवान अरिष्टनेमिनाथ के हस्त-दीक्षित शिष्यो को पूछने मे भी उसने विचार नही किया। यदि अनेक वार घर फरसने की तत्कालीन रीति होती, तो देवकी के लिए पूछने का कोई कारण ही नही रहता।

८ तए णं ते अणगारा देवइं देवीं एवं वयासी—

अनुपम भक्ति आदर्श है। वह अन्य दास-दासियो को दान देने का कह कर स्वयं विपुल दान देती है। 'सिहकेसरा मोदक सिह के समान मोदको में प्रधान होता है। श्रेष्ठ मेवे, शक्कर आदि मूल्यवान मालो से निष्पन्न यह मोदक उत्तम सहनन वाले वासुदेव आदि ही पचा सकते है। केसरा का अर्थ गर्दन के बाल होता है, फीणी की भाति जिन मोदको का निर्माण सिह के बालो सरीखे पिण्ड जैसा दिखे अथवा सिह के बालो जैसे वर्ण वाले मोदक' इत्यादि वर्णन सिहकेसरा मोदक के लिए मिलता है।

६–तयाणंतरं च णं दोच्चं संघाडए बारवईए णयरीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ।

अर्थ–संयोगवश दूसरा संघाड़ा भी देवकी रानी के महलों मे आता है, देवकी रानी उसी प्रीति एवं भक्तिपूर्वक सिंहकेसरा मोदको से मुनियो को प्रतिलाभित कर विसर्जित करती है।

७–तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए बारवईए णयरीए उच्चणीय जाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी–किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए णवजोयण-विच्छिण्णाए पच्चक्खं देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्चणीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति।

अर्थ–संयोग ऐसा बना कि तीसरा संघाड़ा भी प्रथ

करता हुआ देवकी रानी के भवन में जा पहुँचा। देवकी रानी ने उन्हे भी प्रीति एवं भक्तिपूर्वक विपुल मोदको से प्रतिलाभित किया। छहो भाई सरीखी उम्र वाले एवं सरीखी शारीरिक संपदा वाले थे। अत. देवकी रानी को यह ज्ञात नही हो सका कि पहले जो संघाडा आया, वह दूसरा था, फिर दूसरा आया, वह अन्य था तथा यह तीसरा संघाडा अन्य है। यदि उसे यह बात ज्ञात होती तब तो वह पूछती ही नही, पर उसे यही शंका हुई कि यही संघाडा दूसरी बार, तीसरी बार, फिर-फिर कर आ गया है। तब भी विवेकी देवकी ने भोजन वहराने के बाद ही निवेदन किया—हे देवानुप्रियो! कृष्ण वासुदेव की यह द्वारिका नगरी बारह योजन लम्बी एवं नव योजन चौड़ी है, अधिक क्या कहा जाय, प्रत्यक्ष देवलोक के समान है। यहाँ बडे-बडे सेठ-साहूकार एवं धनी-मानी सज्जन रहते है। क्या वे सभी मुनियो को दान देने मे इतने कृपण हो गये है कि हमारे संतो को एक ही घर मे गौचरी के लिए बार-बार आना पडता है?

**विवेचन**—पूज्य श्री समर्थमलजी म मा से अन्तकृत प्रवचनो मे इस प्रसंग पर सुनने को मिलता कि मध्य के तीर्थंकरो के शासन मे भी साधु-साध्वी एक घर को एक ही दिन मे अनेक बार नही फरसते थे। देवकी रानी धर्म की जानकार थी। भगवान अरिष्टनेमिनाथ के हस्त-दीक्षित शिष्यो को पूछने मे भी उसने विचार नही किया। यदि अनेक बार घर फरसने की तत्कालीन रीति होती, तो देवकी के लिए पूछने का कोई कारण ही नही रहता।

८ तए णं ते अणगारा देवइं देवीं एवं वयासी—

णो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बार-वईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्च-णीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, णो चेव णं ताइं-ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्प-विसंति । एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे णयरे णागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोयरा सरिसया जाव णलकुब्बरसमाणा अर-हओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसार-भउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं मुंडा जाव पव्वइया।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो णमंसामो वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो–इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया !' तएणं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो। तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा । तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे देवइं देवीं एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगए ।

अर्थ–देवकी देवी द्वारा 'भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति

वार-वार आने की वात सुनते ही विचक्षण प्रतिभा के धनी तीसरे संघाड़े के दोनो मुनिराज समझ गए कि आगे के दो संघाड़े यहाँ आ चुके है। रूप सादृश्यता के कारण देवकी हमें पहिचान नही सकी है। अत इसकी शंका का समाधान करना आवश्यक है। इसलिए देवकी देवी से वे वोले–

"हे देवानुप्रिये! ऐसा तो नही है कि कृष्ण वासुदेव की इस द्वारिका मे मुनियो को भिक्षा नही मिलती हो तथा वे वार-वार एक ही घर मे प्रवेश करते हो।"

बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति व उसकी सुलसा भार्या के अंगजात छहो भाई है। हमारा रूप-लावण्य सरीखा एवं उत्तम है। भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के समीप हमने धर्म सुना। संसार मे विविध भय, उद्वेग एवं त्रास है। जन्म एवं मरण का महान् दु ख है। इस दु ख से छूटने के लिए तीर्थंकर देव की चरण-शरण मे भागवती दीक्षा स्वीकार की है।

( यद्यपि मुनि को अपना परिचय सामान्यतया देना नही चाहिए तथा तपश्चर्या आदि का गोपन करना चाहिये, परन्तु यहा प्रसंग ऐसा आ पड़ा कि संसार का पूर्व परिचय तो देना पडा ही, साथ ही 'देवकी देवी कही ऐसा न समझ ले कि ये पेटू है, सिहकेसरा मोदक के लालच मे वार-वार यहाँ चक्कर लगाते है।' इस संभावित भ्रम को मिटाने के लिए उन्होने कहा–)

जिस दिन से हमने दीक्षा ली, उसी दिन हमने अर्हत अरिष्टनेमिस्वामी को वंदना-नमस्कार कर यावज्जीवन के लिए

णो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बार- वईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्च- णीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लभंति, णो चेव णं ताइं-ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्प- विसंति । एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे णयरे णागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोयरा सरिसया जाव णलकुब्बरसमाणा अर- हओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसार- भउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं मुंडा जाव पव्वइया।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो णमंसामो वंदित्ता णमंसित्ता इम एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो-इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया !' तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो । तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा । तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे। देवइं देवीं एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

अर्थ-देवकी देवी द्वारा 'भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति

वार-वार आने की बात सुनते ही विचक्षण प्रतिभा के धनी तीसरे संघाड़े के दोनो मुनिराज समझ गए कि आगे के दो संघाड़े यहाँ आ चुके है। रूप सादृश्यता के कारण देवकी हमें पहिचान नही सकी है। अत. इसकी शंका का समाधान करना आवश्यक है। इसलिए देवकी देवी से वे वोले–

"हे देवानुप्रिये ! ऐसा तो नही है कि कृष्ण वासुदेव की इस द्वारिका मे मुनियो को भिक्षा नही मिलती हो तथा वे वार-वार एक ही घर मे प्रवेश करते हो।"

बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति व उसकी सुलसा भार्या के अंगजात छहो भाई है। हमारा रूप-लावण्य सरीखा एवं उत्तम है। भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के समीप हमने धर्म सुना। ससार मे विविध भय, उद्वेग एवं त्रास है। जन्म एवं मरण का महान् दु ख है। इस दु.ख से छूटने के लिए तीर्थंकर देव की चरण-शरण मे भागवती दीक्षा स्वीकार की है।

( यद्यपि मुनि को अपना परिचय सामान्यतया देना नही चाहिए तथा तपश्चर्या आदि का गोपन करना चाहिये, परन्तु यहा प्रसंग ऐसा आ पडा कि संसार का पूर्व परिचय तो देना पडा ही, साथ ही 'देवकी देवी कही ऐसा न समझ ले कि ये पेटू है, सिहकेसरा मोदक के लालच मे वार-वार यहाँ चक्कर लगाते है।' इस संभावित भ्रम को मिटाने के लिए उन्होंने कहा–)

जिस दिन से हमने दीक्षा ली, उसी दिन हमने अर्हत अरिष्टनेमिस्वामी को वंदना-नमस्कार कर यावज्जीवन के लिए

णो खलु देवाणुप्पिए ! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बार-वईए णयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्च-णीय जाव अडमाणा भत्तपाणं णो लब्भंति, णो चेव णं ताइं-ताइं कुलाइं दोच्चं पि तच्चं पि भत्तपाणाए अणुप्प-विसंति। एवं खलु देवाणुप्पिए ! अम्हे भद्दिलपुरे णयरे णागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोयरा सरिसया जाव णलकुब्बरसमाणा अर-हओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म संसार-भउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं मुंडा जाव पव्वइया।

तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो णमंसामो वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो–इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं देवाणुप्पिया !' तएणं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो। तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा। तं णो खलु देवाणुप्पिए ! ते चेव णं अम्हे, अम्हे णं अण्णे। देवइं देवीं एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

अर्थ–देवकी देवी द्वारा 'भुज्जो-भुज्जो अणुप्पविसंति

बार-बार आने की बात सुनते ही विचक्षण प्रतिभा के धनी तीसरे संघाड़े के दोनो मुनिराज समझ गए कि आगे के दो संघाड़े यहाँ आ चुके है। रूप सादृश्यता के कारण देवकी हमें पहिचान नही सकी है। अत. इसकी शंका का समाधान करना आवश्यक है। इसलिए देवकी देवी से वे वोले–

"हे देवानुप्रिये! ऐसा तो नही है कि कृष्ण वासुदेव की इस द्वारिका मे मुनियो को भिक्षा नही मिलती हो तथा वे बार-बार एक ही घर मे प्रवेश करते हो।"

बात यह है कि हम भद्दिलपुर नगर के नाग गाथापति व उसकी सुलसा भार्या के अंगजात छहो भाई है। हमारा रूप-लावण्य सरीखा एवं उत्तम है। भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के समीप हमने धर्म सुना। संसार मे विविध भय, उद्वेग एवं त्रास है। जन्म एवं मरण का महान् दु ख है। इस दु ख से छूटने के लिए तीर्थकर देव की चरण-शरण मे भागवती दीक्षा स्वीकार की है।

( यद्यपि मुनि को अपना परिचय सामान्यतया देना नही चाहिए तथा तपश्चर्या आदि का गोपन करना चाहिये, परन्तु यहां प्रसंग ऐसा आ पडा कि संसार का पूर्व परिचय तो देना पडा ही, साथ ही 'देवकी देवी कही ऐसा न समझ ले कि ये पेटू है, सिहकेसरा मोदक के लालच मे वार-वार यहाँ चक्कर लगाते है।' इस संभावित भ्रम को मिटाने के लिए उन्होने कहा–)

जिस दिन से हमने दीक्षा ली, उसी दिन हमने अर्हत अरिष्टनेमिस्वामी को वंदना-नमस्कार कर यावज्जीवन के लिए

वेले-वेले की निरन्तर तपस्या करने के लिए अनुज्ञा मांगी। प्रभु ने हमारी प्रार्थना स्वीकार की, तव से हम निरन्तर वेले-वेले पारणा करते हुए विचरते है। आज हमारे छहो भ्राताओ के वेले के पारणे थे। प्रथम प्रहर में स्वाध्याय तथा दूसरी प्रहर मे ध्यान करके प्रभु से आज्ञा ले कर हम तीन संघाडे वना कर गौचरी के लिए निकले तथा सामुदानिकी माधुकरी करते हुए यहाँ आ गये। अत· हे देवानुप्रिया ! जो पहले आये थे वे हम नही थे। वे अन्य थे तथा हम अन्य है। इस प्रकार मुनियों ने अपना संक्षिप्त वक्तव्य देकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

**विवेचन**—पूज्य गुरुदेव इस प्रसंग का स्पर्श करते हुए यह भी फरमाते थे कि जैसे देवकी देवी ने लिहाज नही रख के अपनी शंका यथा तथ्य रख दी, वैसे ही धर्मप्रेमी श्रावको को मुनियो का ध्यान रखना चाहिए। उनमे कोई गल्ती दिखाई दे, तो विनयपूर्वक प्रेम से अरज करनी चाहिए।

**९ तएणं तीसे देवईए देवीए अयमेवारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे—एवं खलु अहं पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं बालत्तणे वागरिया—तुमं णं देवाणुप्पिए ! अट्ठ पुत्ते पयाइस्ससि सरिसए जाव णलकुव्वरसमाणे णो चेव णं भरहेवासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयायिस्संति, तं णं मिच्छा। इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ खलु सरिसए जाव पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि-णमंसामि वंदित्ता-णमंसित्ता**

**इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—लहुकरण-जाणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति। जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ।**

अर्थ–मुनियो की बात सुन कर देवकी रानी को बचपन की घटना याद आ गई–"पोलासपुर नगर मे जब मै बालिका थी तब अतिमुक्त नामक (बचपन मे ही दीक्षित होने के कारण) कुमारश्रमण ने मुझे कहा था कि–हे देवानुप्रिया! तुम समान रूपलावण्य वाले आठ पुत्रो को जन्म दोगी, वैसे आठ पुत्र भरत-क्षेत्र की अन्य कोई माता प्रसव नही करेगी। परन्तु यह तो प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है कि सुलसा ने एक सरीखे इन पुत्रो को जन्म दिया है। अत अतिमुक्त कुमार श्रमण की बात झूठी हो गई दिखाई दे रही है। भगवान् अरिष्टनेमि यहाँ विराज ही रहे है, अत. मुझे वास्तविक स्थिति को पूछ कर संदेह दूर कर लेना ही उचित है।" ऐसा विचार कर कौटुम्बिक पुरुषो से छोटे कानो वाले उत्तम घोड़ो से युक्त सुंदर रथ जुतवा कर मंगवाया एवं देवानंदा की भांति प्रभु की सेवा मे गई।

**१० तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवइं देवीं एवं वयासी—'से णूणं तव देवई! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुज्जित्था–एवं खलु पोलासपुरे णयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिगच्छिसि, णिगच्छित्ता जेणेव मम अंतियं हव्वमागया से णूणं देवई**

**देवी ! अयमट्ठे समट्ठे ?' 'हंता अत्थि ।'**

अर्थ–देवकी रानी को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् अरिष्ट नेमि स्वामी ने फरमाया––"हे देवकी ! छहों अणगार आज तुम्हारे यहाँ आए यावत् तुम्हारे मन में, अतिमुक्त अणगार की बात मिथ्या होने की कल्पना हुई। उस संदेह का निवारण करने के लिए तुम शीघ्र ही मेरे पास आई हो। क्या यह बात सत्य है ?" देवकी देवी ने विनयपूर्वक कहा-"प्रभु ! आपसे अज्ञात है ही क्या ? आपने जो फरमाया, बात ऐसी ही है।"

**११ एवं खलु देवाणुप्पिए ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे णयरे णागे णामं गाहावई परिवसइ अड्ढे। तस्स णं णागस्स गाहावइस्स सुलसा णामं भारिया होत्था। सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव णिमित्तिएणं वागरिया–एसणं दारिया णिंदू भविस्सइ।**

अर्थ––भगवान् अरिष्टनेमि ने फरमाया–हे देवकी ! उस समय भद्दिलपुर मे नाग गाथापति रहता था, जिसके सुलसा नामक गाथापत्नी थी। जब सुलसा बालिका थी, तब एक निमित्तवक्ता ने उसे कहा था–इस बालिका की सन्तानें मृत होगी–जीयेगी नही।

**१२ तएणं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसि देव भत्ता यावि होत्था। हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता**

**उल्लपडसाडिया सहरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जाणु-पायवडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा णीहारेइ वा ।**

अर्थ–तव सुलसा वचपन से ही हरिणेगमेषी देव की भक्ति करने लग गई । उसने हरिणेगमेषी देव की एक प्रतिमा वनवाई । नित्य प्रात उठते ही वह स्नान आदि कर के गीले कपड़े पहने उस प्रतिमा की पुष्पो से अर्चना कर पूजा करती एवं घुटने नमा कर प्रणाम करने के वाद ही अन्य आहार-निहार आदि कृत्य करती ।

**१३ तएणं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिवहुमाणसूस्सूसाए हरिणेगमेसीदेवे आराहिए यावि होत्था । तएणं से हरिणेगमेसिदेवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठाए सुलसं गाहावइणीं तुमं च णं दोण्णि वि समउउयाओ करेइ । तए णं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह । तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइइ । तएणं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णए दारए करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तव अंतियं साहरइ । तं समयं च णं तुमं पि णवण्हं मासाणं सुकुमाल दारए पसवसि । जे वि य णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयल**

**संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ । तं तव चेव णं देवइ ! एए पुत्ता, णो चेव सुलसाए गाहावइणीए ।**

(जिन दिनों देवकी का विवाह हो रहा था, जीवयशा अपनी ननद देवकी का सिर गूथ रही थी । जीवयशा के देवर-कंस के छोटे भाई अतिमुक्तक अणगार गौचरी के लिए पधा. तो वैवाहिक राग-रंग मे मस्त जीवयशा ने उनसे कहा—देवरजी! घर पर तो वहिन का विवाह है, आप क्या घर-घर गोचरी फिरते हो ? इस प्रकार अभद्र चेष्टा करने लगी, तब अतिमुक्त अणगार ने जीवयशा से कहा—"तू जिस देवकी के विवाह के उत्सव मे वेभान हो रही है, इसकी सातवी सन्तान तुझे वैधव्य देगी ।" जीवयशा ने कंस से कहा, तथा उसने वसुदेवजी से प्रथम सात सन्ताने मांग ली । उनमें से अनीकसेन आदि छह तो चरमशरीरी थे तथा सातवीं सन्तान श्रीकृष्ण को गुप्त रूप से अन्यत्र भेजा गया, उसी प्रसंग का वर्णन करते हुए भगवान् देवकी से फरमाते है—)

अर्थ—सुलसा की इकरंगी भक्ति-वहुमान एवं सेवा सुश्रूषा से हरिणेगमेषी देव प्रसन्न हो गया । वह सुलसा पर अनुकम्पा करके सुलसा को और तुम्हे साथ-साथ ऋतुमती करने लगा । तुम दोनो साथ-साथ ही गर्भ धारण करती। गर्भ का वहन करती तथा साथ ही प्रसव करती थी । जब सुलसा के मृत सन्तान का जन्म होता तब हरिणेगमेषी देव उसे उठा कर तुम्हारे पास ले आता था तथा तुम्हारे जो सुन्दर

कुमार सन्तान होती उसे उठा कर सुलसा के पास रख आता था। (इस प्रकार हरिणेगमेषी देव ने छह बार ऐसा किया) अत: हरिणेगमेषी देव द्वारा संहरण किये जा कर सुलसा को दिए गए ये छहो मुनि तुम्हारे ही अंगजात है, सुलसा गाथापत्नी के नही। अत. अतिमुक्तक कुमार की भविष्यवाणी असत्य नही, अपितु सत्य है।

**१४ तएणं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया, अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता आगयपण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुयपडिक्खित्तिया दरियवलयबाहा धाराहयकलंबपुप्फगं विव समूसियरोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी पेहमाणी सुचिरं णिरिक्खइ, णिरिक्खित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई णयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवई णयरी अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे**

**जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवा गच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरूहइ, पच्चो रूहित्ता जेणेव सए वासघरे जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयंसि सयणिज्जंसि निसी यइ ।**

अर्थ---भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी से समाधान पा कर देवकी रानी हर्षित एवं संतुष्ट होकर जहाँ वे छह अणगार थे, वहाँ आई, आ कर उन मुनियों को वंदन-नमस्कार किया। पुत्र स्नेह की अधिकता के कारण उसके पाना आ गया। स्तनों से दूध झरने लगा, आँखे विकसित हो गई, कंचुकी तंग हो गई, भुजाओ व कलाईयो के गहने तंग हो गये, कदंब वृक्ष के पुष्प वर्षा की धारा से जैसे विकसित हो जाते है, वैसे ही देवकी का शरीर हर्षातिरेक के कारण फूल गया। निर्निमेष नयनों से देवकी अपने पुत्र मुनियों को काफी देर तक निहारती रही। फिर वंदन-नमस्कार कर जहाँ अरिष्टनेमि स्वामी थे वहाँ आई, वंदन-नमस्कार किया। वंदना करके अपने धार्मिक प्रयोजन में प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठ रथ पर बैठी और द्वारिका मे प्रवेश किया। अपने भवन की बाह्य शाला मे आई। रथ से उतरी। अपने महल के भीतर आई। तथा अपनी शय्या पर बैठी।

**१५ तएणं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—एवं खलु**

अहं सरिसए जाव णलकुब्बरसमाणे सत्तपुत्ते पयाया, णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुभूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं-छण्हं मासाणं मम अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्माओ जासिं मण्णे णियगकुच्छिसंभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुर समुल्लावयाइं मम्मणपजंपियाइं थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए। अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगयरमवि ण पत्ता (एव) ओहयमण-संकप्पा जाव झियायइ।

अर्थ—अपनी शय्या पर बैठने के बाद देवकी देवी को इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ—"अहो! मैंने देवपुत्रों के समान सात-सात पुत्रों को जन्म दिया परन्तु एक का भी शैशव नहीं देखा। यह कृष्णवासुदेव भी छह-छह महीने में एक बार चरण वंदना के लिए आता है। वास्तव में वे मातायें धन्य हैं जो अपने अंगजात शिशुओं के बचपने का आनन्द उठाती हैं, स्तनों के दूध के प्यासे बालक अपनी मनोहर तोतली भाषा बोलते हैं, समझ में नहीं आने वाली भाषा बोल कर गोद में इधर-उधर अभिसरण करते रहते हैं। वे मातायें उन बालकों के कमलों के समान कोमल हाथों को पकड़ कर गोदी में बिठाती हैं तथा दूध पिलाती हुई मीठी-मीठी बातें करती रहती हैं।

इस प्रकार विविध बाल-क्रीड़ाओं से अपना मनोरंजन ... वाली मातायें धन्या, पुण्या एवं कृतपुण्या कहे जाने योग्य हैं। मैं तो महान् अभागिनी, अधन्या, अपुण्या, अकृतपुण्या हूँ। ... शुभ कर्मों का संचय नही किया है। यही कारण है कि ... सात पुत्रों की प्रसव-पीड़ा भोग कर भी, एक का भी शैशव ... नहीं पाया।" इन विचारो में गोते लगाती हुई देवकी आ... ध्यान करने लगी।

**विवेचन**—मोहकर्म की विचित्र दशा जीव को समाधि एवं ... के नजदीक ही नही आने देती। पानी के नीचे आग लगी रहे तो ... ठण्डा एव स्थिर कैसे रहेगा? देवकी रानी ने जो आर्त्तध्यान किया ... मोहजनित एवं अप्रशस्त है। आगमकारो ने यथास्थिति चित्रण किया है। 'परायी थाली मे घी ज्यादा दिखाई देता है।' इस लोकोक्ति के अनु... देवकी को बच्चो के लालन-पालन नहीं कर पाने का खेद है, पर ... बच्चो का लालन-पालन करने वाली मातायें अपने को सुखी मानती हैं नहीं, बच्चो का सकारण-अकारण रोना-रूठना माताओ को तंग कर... है। बच्चो के मल-मूत्र माताओ को साफ करने पडते है, तरह-तरह ... छोटी-मोटी बीमारियाँ बच्चो को लगी रहती है, बालक रोता है, पर ... क्या दर्द है—यह कह नही पाता। ऐसी स्थिति मे पुत्रवती माता... ये उद्गार होते है—

"तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव जीवियफले जाओ ... अवियाउरीओ जाणुकोप्पर मायाओ सुरभिगन्ध-गन्धियाओ ... माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुज्जमाणीओ विहरंति, अहं णं अधण्णा ... अकयपुण्णा णो संचाएमि रट्ठकूडेण सद्धि विउलाइं जाव विहरत्तए।"

अर्थ—वे स्त्रियाँ धन्य है, पुण्यवान है, उन्ही का नर-जीवन ...

जो वंध्या है, प्रसव करने के स्वभाव से रहित है, सर्दी की मौसम मे टने एवं कोहनी ही उनके स्तनो का स्पर्श करते है, पुत्र नही। अतः ऐसी ानु कूर्पर की माताएँ ही धन्य है जो वस्त्रो-गहनो एव सुगधित द्रव्यो ा प्रयोग करती हुई मानवीय काम-भोगो का स्वतत्र सुख भोगती है। ोमा ब्राह्मणी कहती है कि मै अधन्या अपुण्या हूँ जो राष्ट्रकूट-पति के ाथ भोग नही भोग पाती हूँ।

अस्तु, सुख न तो वध्यापने मे है, न सन्तानवती होने मे। सुख का थान तो सयम ही है।

शका—तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन मे तो अनीकसेन को नाग एव ुलसा की सन्तान बताया है। यहाँ स्वयं भगवान् ने देवकी की सन्तान ताया है, क्या यह परस्पर विरोधी बात नही है?

समाधान—लोक-प्रसिद्धि अनीकसेनादि के लिए यही थी, अतः लोक-म्मत्त सत्य की शास्त्रकार उपेक्षा नही करते। वे छहो भाई वही बडे ए थे। वही विवाह हुआ तथा उन्ही की आज्ञा से प्रव्रजित हुए, अतः उस अपेक्षा से वे उनकी सन्ताने भी है ही तथा जन्मदात्री माता देवकी ी, अत यह बात भी सही है। इसमे विरोध नही है।

**१६ इमं च णं से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तएणं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता देवइं देविं एवं वयासी—अण्णया णं अम्मो! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ जाव भवह, किण्णं अम्मो! अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह।**

अर्थ—देवकी इस प्रकार आर्त्तध्यान कर ही रही थी

कि उसी समय स्नान विभूषा कर के श्रीकृष्ण महाराज देवकी रानी के चरण वंदन को आ पहुँचे। उन्होने देखा कि आज मातुश्री के चेहरे पर चिन्ता छाई हुई है। चरण स्पर्श करके कृष्ण ने पूछा–'हे जननी ! रोज तो आप मुझे देख कर प्रसन्न एवं हर्षित होती हो, परन्तु आज चिन्तित एवं उदास हैं। इसका क्या कारण है ?'

**विवेचन**–पुण्यवान जीवो को वैसे तो आर्त्तध्यान के प्रसग कम ही आते हैं, कभी आ भी जाय तो वे लम्बे समय तक नही ठहरते, यह उपरोक्त प्रसग से स्पष्ट होता है। कृष्ण महाराज अपनी माताजी की कितनी भक्ति करते थे, यह भी एक अनुकरणीय आदर्श है।

**१७ तएणं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव समाणे सत्त पुत्ते पयाया। णो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए ! तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं छण्हं-छण्हं मासाणं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि, तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।**

अर्थ–कृष्ण महाराज द्वारा पूछने पर देवकी देवी ने कहा-हे पुत्र ! मैंने सरीखे रूप लावण्य वाले देवकुमार के समान सात-सात पुत्रो को जन्म दिया परन्तु एक का भी वचपन नहीं देखा। (छह तो मुनि बन गए) एक तुम हो वह भी छह-छह महीने से पाद-वंदन करते आते हो। अतः वे मातायें धन्य हैं यावत् इसलिए मै आर्त्तध्यान कर रही हूँ।

**१८ तएणं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी—मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहय जाव झियायह । अहण्णं तहा वत्तिस्सामि, जहा णं ममं सहोयरे कणीयसे भाउए भविस्सइ त्तिकट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा अभओ, णवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोयरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं ।**

अर्थ—देवकी माता की बात सुनकर कृष्ण बोले—'हे मातुश्री ! अब आप चिन्ता मत कीजिये, मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे मुझे सहोदर लघु भ्राता प्राप्त हो ।' इस प्रकार इष्ट, कान्त, शान्तिदायक वचनो से माता को संतुष्ट कर पौषधशाला मे आये तथा हरिणेगमेषी देव का स्मरण करने लगे । अट्ठम भत्त की सारी क्रिया (ज्ञाता अ. १ वर्णित) अभयकुमार के समान जानना । जब तेला पूर्ण होने को आया तो हरिणेगमेषी देव का आसन चलायमान हुआ । अवधिज्ञान का प्रयोग कर वह कृष्ण द्वारा याद किए जाने की बात समझकर शीघ्र ही पौषधशाला मे आया तथा याद करने का प्रयोजन पूछा । पौषध पाल कर श्रीकृष्ण ने देव का आदर-सत्कार कर अपना प्रयोजन बताया कि मेरे सहोदर लघु भ्रात होना चाहिए ।

**विवेचन**—विचक्षण श्रीकृष्ण ने यह तो माता के कहे वृतांत से जान ही लिया था कि अतिमुक्तक अणगार द्वारा आठ सन्तान की बात कही गई है। उसकी सत्यता स्वयं भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी प्रमाणित कर चुके है। अत. माता को धीरज बधा दिया।

शंका—श्रीकृष्ण ने देवाराधना क्यो की ? क्या देव भाई दे सकता है ?

समाधान—श्री कृष्ण महाराज ने हरिणेगमेषी देव की आराधना भ्रात-प्राप्ति के लिए नही की थी। देव भाई देने-नही देने मे समर्थ नहीं होता तथा भाई तो होने की बात पक्की ही थी। हरिणेगमेषी देव की आराधना का कारण तो यह था कि आगे छहो बालको का संहरण हरिणेगमेषी देव ने ही किया था। वही आठवी अंतिम सन्तान का भी संहरण नही करले। अत उसी से याचना करली जाय इसलिए आराधना की थी।

शंका—क्या पौपध मे देव को आव्हान करना उचित था ? यदि यह धार्मिक पौपध नही था तो पौषध पार कर देव का आदर-सत्कार क्यो किया ?

समाधान—यद्यपि यह धार्मिक दृष्टि से पौपध नही होकर पौषध की क्रिया थी तथापि वे पौषध का बाह्य व्यवहार कायम रखने के लिए पौषध मे सावद्य प्रयोजन विषयक वार्तालाप नही करते थे। क्योंकि दुनियाँ मे व्यवहार पालन भी उत्तम पुरुषो को तो करना ही पडता है।

**१९—तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोयरे कणीयसे भाउए से णं उम्मुकबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि तच्चं पि एवं**

वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तएणं से कण्हे वासुदेव पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एव वयासी–होहिइ णं अम्मो! मम सहोयरे कणीयसे भाउत्ति कट्टु, देवइं देविं इट्ठाहिं जाव आसासइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तएणं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव हट्ठतुट्ठहियया। गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।

अर्थ–हरिणेगमेषी देव ने उपयोग लगा कर श्रीकृष्ण महाराज से कहा–'हे देवानुप्रिय! देवलोक से च्यव कर आपके सहोदर कनिष्ठ भ्राता अवश्य होगा, परन्तु वह बाल भाव से उन्मुक्त एवं यौवन वय प्राप्त होने पर अर्हंत अरिष्टनेमि स्वामी के समीप दीक्षा लेगा।' इस प्रकार दुबारा-तिबारा आश्वासन देकर देव स्वस्थान लौट गया।

श्रीकृष्ण पौषधशाला से देवकी माता के पास आये तथा मधुर वचनो से माता को निवेदन किया––'हे माता! मेरे सहोदर लघु भ्राता होगा। आपके मनोरथो की पूर्ति होगी, आप चिन्ता न करे।' यह कह कर श्रीकृष्ण देवकी माता के पास से चले गए।

**विवेचन**–विचक्षण श्रीकृष्ण ने यह तो माता के कहे वृतांत से जान ही लिया था कि अतिमुक्तक अणगार द्वारा आठ सन्तान की बात कही गई है। उसकी सत्यता स्वय भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी प्रमाणित कर चुके है। अत. माता को धीरज बधा दिया।

शंका–श्रीकृष्ण ने देवाराधना क्यो की ? क्या देव भाई दे सकता है ?

समाधान–श्री कृष्ण महाराज ने हरिणेगमेषी देव की आराधना भ्रात-प्राप्ति के लिए नही की थी। देव भाई देने-नही देने मे समर्थ नहीं होता तथा भाई तो होने की वात पक्की ही थी। हरिणेगमेषी देव की आराधना का कारण तो यह था कि आगे छहो वालको का सहरण हरिणेगमेषी देव ने ही किया था। वही आठवी अंतिम सन्तान का भी संहरण नही करले। अत उसी से याचना करली जाय इसलिए आराधना की थी।

शंका–क्या पौषध मे देव को आव्हान करना उचित था ? यदि यह धार्मिक पौषध नही था तो पौषध पार कर देव का आदर-सत्कार क्यो किया ?

समाधान–यद्यपि यह धार्मिक दृष्टि से पौषध नही होकर पौषध की क्रिया थी तथापि वे पौषध का बाह्य व्यवहार कायम रखने के लिए पौषध मे सावद्य प्रयोजन विषयक वार्तालाप नही करते थे। क्योंकि दुनियाँ मे व्यवहार पालन भी उत्तम पुरुषो को तो करना ही पडता है।

**१९–तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–होहिइ णं देवाणुप्पिया ! तव देवलोयचुए सहोयरे कणीयसे भाउए से णं उम्मुकबालभावे जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि तच्चं पि एवं**

वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तएणं से कण्हे वासुदेव पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एवं वयासी–होहिइ णं अम्मो ! मम सहोयरे कणीयसे भाउ त्ति कट्टु, देवइं देविं इट्ठाहिं जाव आसासइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तएणं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा जाव हट्ठतुट्ठहियया। गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।

अर्थ–हरिणेगमेषी देव ने उपयोग लगा कर श्रीकृष्ण महाराज से कहा–'हे देवानुप्रिय ! देवलोक से च्यव कर आपके सहोदर कनिष्ठ भ्राता अवश्य होगा, परन्तु वह बाल भाव से उन्मुक्त एवं यौवन वय प्राप्त होने पर अर्हंत अरिष्टनेमि स्वामी के समीप दीक्षा लेगा।' इस प्रकार दुवारा-तिवारा आश्वासन देकर देव स्वस्थान लौट गया।

श्रीकृष्ण पौषधशाला से देवकी माता के पास आये तथा मधुर वचनो से माता को निवेदन किया—'हे माता ! मेरे सहोदर लघु भ्राता होगा। आपके मनोरथो की पूर्ति होगी, आप चिन्ता न करे।' यह कह कर श्रीकृष्ण देवकी माता के पास से चले गए।

कालान्तर मे तथाप्रकार के शयनीय मे सोती हुई देवकी ने सिह का उत्तम स्वप्न देखा यावत् स्वप्न फल सुन कर हर्षित हुई गर्भ का सुखपूर्वक परिवहन करने लगी ।

**विवेचन**—शका—देव ने कृष्ण महाराज से होने वाले लघुभ्राता के सयम लेने की सूचना दी थी, पर कृष्ण महाराज ने माताजी को अधूरी सूचना ही क्यो दी ?

समाधान—माताजी को दीक्षित होने के समाचार साथ ही देने से खेद होने की सभावना थी । माताजी को वालक का वचपना देखना था तथा वह मनोरथ पूरा होने मे कोई वाधा नही थी । उत्तम पुरुषो का वचन-विवेक वडा प्रशंसनीय होता है । वे कहने योग्य वात ही कहते हैं।

**२० तएणं सा देवई देवी णवण्हं मासाणं जासुमणारत्त-बंधुजीवय-लक्खारस-सरस - पारिजातक - तरुणदिवायरसमप्पभं, सव्वणयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया । जम्मणं जहा मेहकुमारे जाव जम्हा णं अम्हं इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स णामधेज्जे गयसुकुमाले ।**

**तएणं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामं करेइ गयसुकुमाले त्ति सेसं जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था ।**

अर्थ—गर्भकाल के नौ महीनों की समाप्ति होने पर देवकी रानी ने हाथी के तालु के समान कोमल सुकुमार एवं सर्वांग सुन्दर वालक को जन्म दिया । जिसका वर्ण जपाकुसुम, वंधुजीवक, लाख के रस, लाल कमल एवं ऊगते हुए सूर्य के

समान लालिमायुक्त एवं सभी को प्रिय लगने वाला था। मेघकुमार के जन्मोत्सव के समान राजसी वैभव से बालक का जन्मोत्सव मनाया गया।

ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधियो को आमंत्रित कर उन्हे विपुल अशन, पान आदि से सत्कार-सम्मान कर माता-पिता ने गुणनिष्पन्न नामकरण किया—चूकि यह बालक हाथी के तालुए के समान कोमल एवं कमनीय है, अत इसका नाम गजसुकुमार हो।

कालान्तर में गजसुकुमार को कलाचार्य के पास भेजा गया एवं सारी कलाओ मे निपुणता प्राप्त की। यौवन वय मे गजसुकुमारजी का प्रवेश हुआ।

**२१ तत्थ णं बारवईए णयरीए सोमिले णामं माहणे परिवसइ अड्ढे रिउव्वेय जाव सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था। तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स सोमसिरि णाम माहणी होत्था, सुकुमाला। तस्स ण सोमिलस्स माहणस्स धूया-सोमसिरीए माहणीए अत्तया सोमा णाम दारिया होत्था। सुकुमाला जाव सुरूवा, रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था।**

अर्थ—उस द्वारिका मे सोमिल नामक धनाढ्य एव वेदादि का ज्ञाता ब्राह्मण रहता था, जिसके सोमश्री नामक सुरूपा भार्या थी। सोमिल की कन्या सोमश्री की आत्मजा सोमा नामक बालिका रूप-लावण्य आदि से अत्यंत सुशोभित थी।

२२–तएणं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइं ण्हाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्त सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणे रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गं कणगतिदूसएणं कीलमाणी कीलमाणी चिट्ठइ।

अर्थ–एक वार स्नान करके, वस्त्रालंकारों से विभूषित होक बहुत-सी सहेलियों एवं दासियों के साथ वह सोमा कन्या घर राजमार्ग पर आई तथा स्वर्णखचित गेंद से खेलने लगी।

२३–तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमि समोसढे, परिसा णिग्गया। तएणं से कण्हे वासुदे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसि गयसुकुमालेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंट-मल्लदामे छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुवमाणीहिं उद्धुवमाणीहिं बारवईए णयरीए मज्झंमज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए णिगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य जा विम्हिए।

तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया सोमिलं माहणं जाइत्ता सोमं दारियं गिण्हह गिण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह, तएणं एसा गयसुकु

**मालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ । तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चक्खवंति, तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।**

अर्थ---उस समय भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी का द्वारिका मे पधारना हुआ । परिषद् धर्म श्रवण के लिए गई । श्रीकृष्ण ने स्नान करके विभूषित हो कर गजसुकुमार के साथ उत्तम हाथी पर आरूढ हो कर, छत्र पर कोरंट वृक्ष के फूल धारण कर, उत्तम श्वेत चामरो से विंजाते हुए अपने महलों से निकले तथा प्रभु की सेवा मे जाने लगे ।

जाते हुए श्रीकृष्ण की दृष्टि खेलती हुई सोमा बालिका पर पडी, तो बालिका के रूप-लावण्य एवं सौन्दर्य से कृष्ण महाराज विस्मित हो गये। अपने विश्वस्त पुरुषो को आदेश दिया--हे देवानुप्रियो ! सोमिल ब्राह्मण के पास जा कर इस कन्यारत्न की याचना करो तथा इसे कन्याओ के अन्त पुर में रख दो । यथासमय यह गजसुकुमार की भार्या बनेगी । कृष्ण महाराज के आदेशानुसार वे कौटुम्बिक पुरुष गए तथा सोमा को कन्याओ के अंतःपुर में स्थापित कर श्रीकृष्ण को आज्ञा प्रत्यर्पित कर दी ।

**विवेचन**--यद्यपि हरिणेगमेषी देव ने कृष्ण को गजसुकुमारजी की दीक्षा लेने की सूचना कर दी थी, तथापि धर्मप्रेमी कृष्ण ने प्रभु की पर्युपासना मे जाते समय गजसुकुमारजी को साथ लिया । 'प्रभु की वाणी सुन कर कही यह वैराग्य-वासित नही हो जाय' यह भावना नही थी । अशुभ नजर निवारण के लिए छत्र पर कोरंट(कनेर)के फूलो की माला

रखी जाती थी, ऐसी श्रुति है ।

शंका–जब श्रीकृष्ण जानते थे कि गजसुकुमार दीक्षा लेंगे, उन्होने सोमा कन्या की याचना क्यो करवाई ?

समाधान–देव ने संयमी वनने की सूचना तो की थी, पर स्पष्ट यह नही वताया था कि वे कुँवारे ही सयम धारण करेंगे या विवा होकर ? कन्या की याचना तो वडे भाई होने के लौकिक उत्तरदा के नाते की थी ।

**२४ कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झंमज्झे णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्ज जाव पज्जुवासइ । तएणं अरहा अरिट्ठणेमि कण्ह वासुदेवस्स गयसुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य० (मह महालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्ख जहा जीवा बज्झंति मुच्चंति जह य संकिलिस्सं धम्मकहा । कण्हे पडिगए ।**

**तएणं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठणे स्स अंतियं धम्मं सोच्चा जं णवरं अम्मापियरं आपुच्छा जहा मेहे णवरं महिलिया वज्जं जाव वड्ढियकुले ।**

अर्थ–कृष्ण-वासुदेव राजमार्ग से सहस्राम्र वन उ पहुँचे एवं प्रभु की पर्युपासना करने लगे । प्रभु ने कृष्ण, सुकुमार तथा उपस्थित धर्म-सभा को धर्मोपदेश फरमाया कृष्ण चले गये ।

गजसुकुमार ने प्रभु के समीप मातापिता से पूछ कर सं

ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की तथा घर आ कर माता-पिता से संयम की आज्ञा मांगी। (श्री ज्ञाता सूत्र अध्ययन एक वर्णित मेघकुमार के समान) प्रश्नोत्तर हुए। अन्तर यही कि मेघकुमार के माता-पिता ने पत्नियो के रूप लावण्य का बखान करते संसार मे रहने का आग्रह किया था, पर गजसुकुमार के माता-पिता ने अविवाहित गजसुकुमार से विवाह कर वंश-वृद्धि होने पर-वृद्धावस्था आने पर संयम धारण करने का आग्रह किया।

**२५–तएणं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणे ४ गयसुकुमाले तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे णिवेसइ, णिवेसित्ता एवं वयासी–तुमं णं ममं सहोयरे कणीयसे भाया, तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया! इयाणिं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वयाहि। अहण्णं तुमे बारवईए णयरीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिस्सामि। तएणं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।**

**तएणं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! माणुस्सया कामा असुइ असासया वंतासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति। तं इच्छामि णं**

देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।

तएणं तं गयसुकुमालं कुमारं कण्हे वासुदेवे अम्मा-पियरो य जाहे णो संचाएइ बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए, ताहे अकामाइं चेव एवं वयासी–तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए। णिक्खमणं जहा महब्बलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए। से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

अर्थ–गजसुकुमारजी की दीक्षा लेने की भावना जान कर श्री कृष्ण गजसुकुमारजी के पास आए। प्रेम से गले लगाया तथा गोद मे बिठा कर कहने लगे–"प्रिय बंधु ! तुम मेरे सहोदर लघु भ्राता हो, तुम दीक्षा ग्रहण मत करो। मैं तुम्हे शीघ्र ही राज्याभिषेक से राजा बनाना चाहता हूँ।" गजसुकुमार यह सुन कर मौन रहे तथा राजा बनने की अनिच्छा प्रकट की।

कुछ देर मौन रह कर गजसुकुमारजी ने माता-पिता व कृष्णजी से कहा–'हे देवानुप्रियो ! (संसार मे रहने के मूल आकर्षण रूप) ये मानवीय काम-भोग अशुचि, अशाश्वत, वमन को झराने वाले, कफ को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले, शोणित है, गंदे उच्छ्वासनिश्वास वाले है, खराब दुर्गंधित मल मूत्र-पीव से परिपूर्ण है, शरीर में मल-मूत्र-श्लेष्म-वमन-पित्त शुक्र और शोणित का ही तो भण्डार है। भोगो का आधार

भूत यह शरीर भी ध्रुव नही है, नियत नही है, शाश्वत नही है, सड़ने-पडने और विध्वंस होने के स्वभाव वाला है, पहले या पीछे अवश्य त्यागने योग्य है। पहले कौन जायेगा और पीछे कौन जायेगा, यह भी कौन जानता है? अत. आप मुझे अणगार वृत्ति धारण करने की अनुज्ञा प्रदान करे।

माता-पिता व कृष्ण जब बहुत-सी अनुकूल (संसार की ओर आकर्षित करने वाली) प्रतिकूल (संयम से विमुख करने वाली) प्ररूपणाओ से गजसुकुमारजी को नही समझा सके तो आखिर विवश हो कर कहा—हम तुम्हारी एक दिन की राज्यश्री देखना चाहते है। बडो के इस आग्रह को गजसुकुमार अनिच्छा पूर्वक मौन रह कर स्वीकार करते है। राज्याभिषेक के पश्चात् गजसुकुमार को पूछा जाता है-तुम्हे क्या प्रिय है? किसे क्या देवे? गजसुकुमारजी कुत्रिकापण से पात्र रजोहरण आदि मँग-वाने व नापित बुलाने का निर्देश करते है। महान् ऋद्धि-सत्कार के दीक्षा महोत्सव की संरचना होती है तथा गजसुकुमार अण-गार बन जाते है। भगवान् अरिष्टनेमि उन्हे संयम समाचारी सिखाते हुए फरमाते है—'किस प्रकार चलना, खडे रहना, बैठना, सोना, भाषा, आहार आदि की शिक्षा फरमाते है।' इस प्रकार गजसुकुमार अणगार ईर्यासमित यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाते है।

**तएणं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्व-इए—तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि—जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता**

अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ-णमंसइ, वंदित्ता-णमंसित्ता एवं वयासी- 'इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महा-कालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ।' 'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

अर्थ-जिस दिन गजसुकुमार अणगार दीक्षित हुए उसी दिन दिवस के चौथे प्रहर मे भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी के समीप उपस्थित हो कर तीन बार आवर्तन युक्त वंदना-नमस्कार कर के प्रार्थना करते हुए फरमाते है-हे भगवन् ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मै महाकाल नामक श्मशान मे भिक्षु की एक-रात्रिकी नामक बारहवी भिक्षु-प्रतिमा की आराधना करना चाहता हूँ । भगवान् ने फरमाया-हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, वैसा करो ।

**विवेचन**-प्रश्न-बारहवी भिक्षु-प्रतिमा के क्या नियम है ?

उत्तर-निर्जल तेला कर के साधक ग्रामादि के बाहर, शरीर को कुछ झुका कर के, एक पुद्गल पर दृष्टि जमा कर, अनिमेष दृष्टि से स्थिर शरीरी होकर, सभी इद्रियो का गोपन करता हुआ-ध्यानस्थ रहता है । दैविक, मानवीय या पाशविक उपसर्गो को समभाव से सहता है। मल-मूत्र की बाधा होने पर पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर जा कर निवृत्त होकर पुन कायोत्सर्ग मुद्रा मे स्थित रहता है। यदि इस प्रतिमा का सम्यक् परिवहन नही किया जाय तो उन्माद, दीर्घकालिक रोगातक या जिनधर्म से च्युति हो सकती है । सम्यक् आराधना होने पर अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान या केवलज्ञान तीनो मे से कोई न कोई अवश्य होता है

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कम से कम उनतीस वर्ष की उम्र, वीस वर्ष की दीक्षा तथा नववे पूर्व की तीसरी आचार-वस्तु का ज्ञान आवश्यक है, पर यहाँ अनुज्ञा प्रदान करने वाले स्वय तीर्थंकर देव हैं, अत श्रुत व्यवहार यहा निर्यामक नही है।

प्रश्न—गजसुकुमारजी को बारहवी भिक्षु प्रतिमाराधन की कैसे सूझी तथा इसकी परिचिति एवं विधि कहाँ से जानी ?

उत्तर—संभवत धर्म-देशना मे प्रतिमा वर्णन हुआ हो जिससे उनमे भी प्रतिमाराधन करने का उत्साह जगा हो। अनुज्ञा देने वालो ने विधि भी बताई ही होगी।

प्रश्न—पूर्वधर तो अनुप्रेक्षा मे समय बिताते है, गजसुकुमारजी ने कायोत्सर्ग मे क्या चिन्तन किया ?

उत्तर—यद्यपि वे आगमो के अभ्यासी नहीं थे, तथापि भगवान् की धर्मदेशना तो सुनी ही थी, उस सुने हुए एव भिक्षु प्रतिमा की अनुज्ञा प्रदान करते समय भगवान् ने जो विधि फरमाई उसका चिन्तन करते रहे होगे।

**२६ तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमि वंदइ-णमंसइ, वंदित्ता-णमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवणं भूमिं पडिलेहेइ पडिलेहित्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।**

अर्थ—अर्हंत-अरिष्टनेमि प्रभु की आज्ञा हो जाने पर गजसुकुमार अणगार प्रभु को वंदना नमस्कार करते हैं। वंदना नमस्कार कर के भगवान् के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से निकलते है। तथा जहाँ महाकाल श्मशान था, वहाँ आते हैं। उच्चार-प्रस्रवण योग्य भूमि की प्रतिलेखना करते हैं। फिर ध्यान योग्य भूमि का चयन करके उसकी प्रतिलेखना करते हैं। शरीर को थोडा सा झुका कर, चार अंगुल के अन्तर से दोनों पंजों को फैला कर पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित कर के, एकरात्रि की भिक्षु की महाप्रतिमा को धारण कर खड़े हो गए।

**२७ इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ णयरीओ बहिया पुव्वणिग्गए समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडयं च गिण्हइ, गिण्हित्ता तओ पडिणिवत्तइ, पडिणिवत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे-वीइवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ, सरित्ता आसुरत्ते एवं वयासी— 'एसणं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए। जे णं मम धूयं सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणीं विप्प-जहित्ता मुंडे जाव पव्वइए।**

**तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स वेरणिज्जायणं**

करित्तए एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करित्ता सरसं मट्टियं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चियायाओ फुल्लियकिंसुय समाणे खयरंगारे कहल्लेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए ।

तएणं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा । तएणं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ । तएणं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहियासेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे ।

अर्थ--गजसुकुमार अणगार के प्रतिमा-भूमि मे आने से पूर्व ही सोमिल ब्राह्मण जंगल मे यज्ञ के लिए काष्ठ आदि लेने गया हुआ था । वह सोमिल ब्राह्मण समिधा-यज्ञ के लिए

काम आने वाली लकडियाँ, कुश, डाभ, पत्ते आदि लेकर वापिस आया। महाकाल श्मशान के पास ही ध्यानस्थ गजसुकुमारजी पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस समय संध्याकाल था। श्मशान की ओर संध्या के समय मनुष्यो का आवागमन बहुत कम था। सोमिल को एकान्त स्थान देख कर पूर्व वैर की स्मृति सजग हो उठी। (लाखो भवों के पूर्व का वैर अब एक छोटे-से निमित्त से उभरा कि) "अहो! यह गजसुकुमार अणगार (जिस मृत्यु की कोई इच्छा नहीं करता उस) अप्रार्थित का प्रार्थी, लज्जा आदि से रहित है। मेरी पत्नी सोमश्री से उत्पन्न सोमा कन्या को कल तो वाग्दत्ता के रूप मे प्रसिद्ध किया और आज उसे छोड़ कर मुनि बन बैठा है। आखिर मेरी पुत्री में दोष ही क्या है? वह यौवन अवस्था को प्राप्त एवं अनिन्द्य सुंदरी है, पर यह निर्लज्ज उसे त्याग कर बैठा।

मुझे इसका प्रतिशोध लेना आवश्यक है और श्रेयस्कर है।" इस प्रकार विचार कर के उसने दिशा प्रतिलेखन किया कि इधर-उधर कोई मुझे देख तो नहीं रहा है। चारो ओर भली-भांति निरीक्षण कर के सोमिल ने नजदीक के जलाशय से गीली मिट्टी ली एवं गजसुकुमारजी के पास आया और उनके सिर पर चारो ओर पाल बांधी। श्मशान मे जलती हुई चिता मे से खैर नामक लकड़ी के धगधगते अंगारे एक मिट्टी के ठीकरे में भरे और गजसुकुमार अणगार के सिर पर डाल दिये फिर 'कोई मुझे देख न ले' इस भय से जिस दिशा से आया, उसी दिशा मे वह सोमिल भाग गया।

सिर पर जाज्ज्वल्यमान अंगारो के ताप से गजसुकुमार अणगार के शरीर मे भयंकर, असह्य पीडा हुई। उस पीडा को सहना सामान्य बात नही थी, पर क्षमाश्रमण गजसुकुमारजी ने उस महान् वेदना को अत्यंत धैर्यपूर्वक सहन किया। इतना ही नही, बल्कि सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी द्वेष नही किया। गजसुकुमार अणगार की उस अनुपम क्षमा से परिणामो की प्रशस्तता निरन्तर वृद्धिगंत होती रही। अध्यवसायो की निर्मलता बढती रही। अप्रमत्तदशा मे बढोतरी होते-होते आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान से क्षपकश्रेणी पर आरोहण शुरू किया। कर्मो की रज को बिखेरते हुए—घाति-कर्मो के समस्त पर्यवो का क्षय करते हुए गजसुकुमार तेरहवे गुणस्थान को प्राप्त हो गये। उन्हे अनन्त, अनुत्तर, प्रधान, निरावरण कृत्स्न एवं परिपूर्ण ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान, श्रेष्ठ दर्शन (केवलज्ञान केवलदर्शन) की प्राप्ति हो गई। आयुष्य कर्म की अल्पता एवं वेदनीय की तीव्रता से शीघ्र ही चौदहवें गुणस्थान का स्पर्श कर गजसुकुमार अणगार सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए। जन्म, मरण, व्याधि एवं बुढापे आदि सभी दुःखो से रहित हो गये।

**विवेचन**—सोमा कन्या को कन्याओ के अन्तःपुर मे रखा गया था। वह कुँवारी थी तथा सुरूपा भी थी। ऐसी रूप राशि की स्वामिनी जिसने कृष्ण महाराज को विस्मित कर दिया था। क्या गजसुकुमारजी के दीक्षा के लेने मात्र से सोमा कुँवारी रह जाती? यादव वंश मे अनेक बल-रूप सपन्न राजकुमार थे। फिर कुँवारी के तो 'सौ घर और सौ वर' की लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है। अनीकसेनादि ने बत्तीस-बत्तीस पत्नियो को छोड कर दीक्षा ली थी, गौतमकुमार आदि ने आठ-आठ रानियाँ छोडी

थी। उनके श्वसुर तो नाराज नही हुए थे जब कि वे परिणिता पत्नि थी। इत्यादि उहापोह करने पर ध्यान मे आयेगा कि सोमिल का वह चिन्तन असामयिक एव अव्यवहारिक था।

कुछ भी हो, ग्रथकारो का कहना है कि निन्नाणु लाख भवो के पूर्व गजसुकुमार के जीव ने सोत के लडके सोमिल के जीव को ईर्ष्यावश गर्म-गर्म उड़द के आटे की मोटी रोटी गले पर बाँध कर मार दिया था, उस वैर का वदला सोमिल ने इस भव मे लिया।

वदला लेना या नही लेना—यह महत्त्वपूर्ण नही है। यदि इस बीच सोमिल की मुक्ति हो गई होती अथवा वह मानवेत्तर गति मे होता अथवा मनुष्य होकर भी द्वारिका मे नही होता तो वह वदला लेने कहाँ से आता। महत्त्वपूर्ण है वदला चुकाना। उदय होने पर कर्म फल देते है। गजसुकुमारजी की भाति क्षमा-तितिक्षा पूर्वक समभाव से विपाक वेदन कर लिया जाय तो नए कर्मो की शृखला नही वनती।

सोमिल ने उनके सिर पर अगारे डाले थे तव भी उन्होने उस पर मन से भी द्वेष नही किया। आत्मज्ञानी साधक जानता है कि कोई किसी को सुखी या दु खी वनाने का निमित्त मात्र होता है, वास्तव मे उपादान तो अपनी आत्मा ही है।

शका—गीली मिट्टी की पाल वॉधने की क्या आवश्यकता थी?

समाधान—महापुरुषो का मस्तक गोल एवं ऊँचा होता है। उस पर मुण्डन हुआ था, अत. वाल भी नही थे। ऐसी अवस्था मे विना पाल वॉधे वे अंगारे सिर पर टिक नही सकते थे।

शंका—गजसुकुमारजी को यह वेदना कितने समय तक रही?

समाधान—अंगारे डालने के वाद देह दग्ध होने लग गया था। प्रहर भर के भीतर भीतर ही मुक्ति हो जाने की संभावना है। खैर के अंगारे काफी समय तक जलते है तथा ताप भी विशेप देते हैं।

नरक मे यहां से अनतगुणी उष्णता है, अतः कर्म-निर्जरा के लिए

मात्र ताप ही पर्याप्त नही, उनके परिणामो-अध्यवसायो की निर्मलता एवं आत्मा के भेद-विज्ञान का चिन्तन भी कर्म-क्षय मे प्रबल सहायक सिद्ध होता है।

शंका–भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी ने गजसुकुमारजी को आज्ञा ही क्यो दी ? वे तो केवलज्ञानी थे।

समाधान–केवलज्ञानी होने के कारण भगवान् जानते थे कि गजसुकुमार की मुक्ति इसी रूप मे होने वाली है। गौशालक-उपसर्ग मे भगवान् महावीर स्वामी ने स्पष्ट आदेश फरमाया था कि कोई भी गौशालक से प्रश्नोत्तर नही करे, पर सर्वानुभूति एवं सुनक्षत्र मुनिराज से नही रहा गया। उन्होने गौशालक को समझाया, फलत वे तेजो-निसर्ग से भस्मीभूत हो गए। भवितव्यता ज्ञानियो के दृष्टिपथ मे होती है, उसे अन्यथा करना तो स्वय अपने ज्ञान मे ही विसवादन होने जैसा होने से असंभव है।

गजसुकुमारजी की आयुष्य पर्याय भी पूरी होने को थी। अत पूर्ण ज्ञानी प्रभु की प्रवृत्ति मे मगल ही रहा हुआ समझना चाहिए।

**२८ तत्थ णं अहासंणिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहियंति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाडिए चेलुक्खेवे कए दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।**

अर्थ–गजसुकुमारजी का मोक्ष होने पर समीपवर्ती (व्यंतर आदि) देवो का उपयोग लगा, उन्होने गजसुकुमारजी की आराधना एवं साधना से आकर्षित हो कर सुगंधित जल बरसाया, पंचरंगे फूल बरसाए, ध्वजाये फहराई तथा मधुर गीत एवं संगीत द्वारा आस-पास के वायुमण्डल को गुजा दिया।

**विवेचन**--प्रश्न--निर्वाणोपरात देवो ने ये उपक्रम किए तो जब सिर पर अंगारे धधक रहे थे तब देवो ने सहायता क्यो नही की ?

उत्तर--उस समय देवो का उपयोग नही लगा था।

प्रश्न--क्या श्रीकृष्ण महाराज को इन दैविक कार्यक्रमों से गज सुकुमारजी के निर्वाण का पता नही लगा ?

उत्तर--उस समय देवो द्वारा किये गये जल-पुष्प वृष्टि आ सामान्य समझे जाते थे, क्योकि भगवान् के कई अतेवासी केवलज्ञ निर्वाण आदि प्राप्त करते रहते थे। फिर यह भी कोई नियम नही हर महापुरुष को केवलज्ञान होने पर या निर्वाण होने पर देवो द्वा महोत्सव हो ही, यह तो देवो का उपयोग लग गया, अत उन्होंने ये का कर लिए अन्यथा उपयोग नही लगता तो ये कार्यक्रम नही भी होते राज कार्य मे व्यस्त कृष्ण महाराज ने कदाचित् ये देवकृत शब्दादि सु भी होगे तब भी यह तो वे कैसे सोच सकते थे कि गजसुकुमारजी निर्वाण हो गया है, क्योकि इतनी जल्दी गजसुकुमारजी को केवलज्ञ या मुक्ति होने की तो सम्भावना ही नही रखी जाती थी।

**२९ तएणं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभाया जाव जलंते ण्हाए जाव विभूसिए हत्थिवखंधवरग सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचाम राहिं उद्धुवमाणीहिं महया भडचडकर-पहकर वं परिक्खित्ते बारवइं णयरीं मज्झंमज्झेणं जेणेव अर अरिट्ठणेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।**

**तएणं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरीए मज्झ मज्झेणं णिग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं पासइ जुण्णं जर जज्जरियदेहं जाव किलंते महई महालयाओ इट्टगरासी**

गमेगं इट्टगं गहाय बहियारत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्प-
वसमाणं पासइ ।

तएणं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंप-
ट्ठाए हत्थिक्खंधवरगए चेव एगं इट्टगं गिण्हइ, गिण्हित्ता
हियारत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ। तएणं कण्हेणं
ासुदेवेणं एगए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं
ुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहियारत्थापहाओ
ंतोघरंसि अणुप्पवेसिए ।

अर्थ—गजसुकुमारजी की दीक्षा के दूसरे दिन प्रात काल
ुवन-भास्कर सूर्य के उदय होने पर श्रीकृष्ण स्नान यावत्
वभूषित होकर गजस्कंध पर आरूढ हुए, कोरटक वृक्ष के फूल
त्र पर धारण किए, श्वेत चामर डुलाए जाने लगे, बहुसंख्यक
ुभट आदि के वृंद से घिरे हुए अरिहंत अरिष्टनेमि स्वामी
ो वंदना-नमस्कार करने के लिए रवाना हुए ।

रास्ते मे कृष्ण महाराज ने देखा एक दुर्बल, क्षीणकाय
ृद्ध पुरुष बहुत बड़े ईंटो के ढेर मे एक-एक ईंट उठा कर कष्ट-
र्विक अपने घर के भीतर रख रहा था ।

'यह अकेला वृद्ध इतनी सारी ईंटो को रास्ते में से उठा
र घर के भीतर कैसे रख पायेगा ?' इस विचार से वृद्ध
ुरुष पर अनुकम्पा करते हुए हाथी पर बैठे-बैठे ही कृष्ण महा-
राज ने उस ढेर में से एक ईंट उठाई तथा घर के भीतर रख
ी। साथ वाले सज्जन कृष्ण महाराज का अभिप्राय समझ गए

तथा सभी ने ईंटे उठा-उठा कर घर में रख दी। इस प्रक
शीघ्र ही ईंटो का ढेर घर के भीतर पहुँच गया तथा 
पुरुष का काम बन गया।

३० तएणं से कण्हे वासुदेवे बारवईए णयरं
मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव अर
अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव वं
णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता गयसुकुमालं अणगारं अपा
माणे, अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसि
एवं वयासी—'कहि णं भंते! से मम सहोयरे भा
गयसुकुमाले अणगारे? जण्णं अहं वंदामि णमंसामि
तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी
'साहिए णं कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्प
अट्ठे।'

तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं
वयासी—'कहण्णं भंते! गयसुकुमालेणं अणगा
साहिए अप्पणो अट्ठे?'

तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेव
वयासी—"एवं खलु कण्हा! गयसुकुमाले णं अणगा
ममं कल्लं पुव्वावरण्हकालसमयंसि वंदइ णमंसइ, वंदि
णमंसित्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं जाव उवसंप
त्ताणं विहरइ।' तएणं तं गयसुकुमाल अणगारं

**पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते जाव सिद्धे। तं एवं खलु कण्हा! गयसुकुमाले अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।"**

अर्थ–वृद्ध पर अनुकम्पा कर के कृष्ण महाराज भगवान् अरिष्टनेमि स्वामीजी की सेवा मे उपस्थित हुए। वंदना-नमस्कार किया। जब गजसुकुमारजी मुनिराज को नही देखा तब भगवान् ने पूछा–'(संसार पक्षीय) मेरे लघु सहोदर भ्राता गजमुनि कहाँ है? मै उन्हे वंदना–नमस्कार करना चाहता हूँ।' तब भगवान् ने फरमाया–'हे कृष्ण! गजसुकुमार अणगार ने तो अपना अर्थ सिद्ध कर लिया।'

आश्चर्यचकित कृष्ण बोले–'गजसुकुमारजी ने कैसे (इतनी जल्दी) अपना प्रयोजन साध लिया?'

भगवान् ने फरमाया—'हे कृष्ण! कल दिवस के चौथे प्रहर मे गज अणगार मेरे पास आये, वंदना-नमस्कार कर भिक्षु की बारहवी प्रतिमा आराधन की अनुज्ञा माँगी यावत् एक पुरुष उधर से निकला। उसने कुपित होकर मृतिका की पाल बाध कर अंगारे सिर पर रख दिए यावत् सारा वर्णन जान लेना। इस प्रकार गजसुकुमारजी ने जिस प्रयोजन से संयम स्वीकार किया था वह अर्थ सिद्ध कर लिया है।'

**३१ तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—'केसणं भंते! से पुरिसे अप्पत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए, जे णं ममं सहोयरं कणीयसं भायरं**

गयसुकुमालं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए ?' तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पओसमावज्जाहि, एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे !' 'कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गय-सुकुमालस्स णं साहिज्जे दिण्णे ?' तएणं अरहा अरिट्ठ-णेमी कण्हं वासुदेवं एव वयासी—'से णूणं कण्हा ! तुम ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए णयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुप्पवेसिए। जहा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे । एवामेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसय-सहस्ससंचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे ।'

अर्थ—कृष्ण महाराज को अपने सहोदर भ्राता गजसुकुमार अणगार की नृशंस हत्या के समाचारों से रोष हुआ । उन्होंने प्रभु से पूछा—'मृत्यु का अभिलाषी लज्जा-बुद्धि आदि से सर्वथा रहित वह कौन कुपात्र है जिसने मेरे लघुभ्राता गजसुकुमार को अकाल में ही मौत के घाट उतार दिया ?' भगवान् ने फरमाया—'हे कृष्ण ! उस पुरुष पर द्वेष मत करो, उस पुरुष ने तो गजसुकुमारजी को सहायता दी है ।' कृष्ण महाराज ने पूछा—'हे भगवन् ! सिर पर अंगारे रख कर मारने वाला किस प्रकार सहायता देने वाला हुआ ?' अरिष्टनेमि स्वामी

ने फरमाया—'आज मेरे चरण-वंदन करने आते समय तुमने उस वृद्ध पुरुष पर दया कर के एक ईंट को घर के भीतर रखा तथा फलत. ईंटो का ढेर शीघ्र ही घर मे पहुँचा दिया गया। जैसे तुमने उस वृद्ध पुरुष की सहायता की वैसे ही उस पुरुष ने गजसुकुमार के लाखो भवो से संचय किए हुए कर्म-पुन्जो को भस्मीभूत कर निर्जरा करने मे सहायता दी है।'

**विवेचन**—जैन दर्शन वस्तुत विचित्र धर्म दर्शन है। यहाँ हर उल्टी बात को सुलटा लिया जाता है, उलझी हुई गुत्थियो का सुगमता से सुलझा लिया जाता है। वीरवर सेनानी गजसुकुमार जहाँ मन से भी द्वेष नही करते, वही सेनापति भगवान् अरिष्टनेमि नृशंस क्रूर हत्यारे को 'सहाय्ता दाता' निरूपित करते है। वह भी तत्काल घटित घटना का उद्धरण देकर।

प्रश्न—तव सोमिल दुर्गति मे क्यो जायेगा, जव कि उसने सहायता दी है ?

उत्तर—प्रत्येक को अपनी भावना के अनुसार फल मिलता है। यदि सोमिल शुभ-भावना से उत्तम आहार वहराता तथा उसका अशुभ परिणमन हो कर गजसुकुमारजी का प्राणान्त भी हो जाता, तव भी उसको शुभ भावो के कारण उत्तम फल मिलता। नही तो आहार वहराने वाला यदि अशुभ परिणामो से खराव आहार देवे तो मुनि को उसका शुभ परिणमन हो तव भी दाता को अशुभ फल ही मिलेगा। सोमिल की भावना अपना प्रतिशोध लेने की थी। गजसुकुमारजी ने समता भाव रख लिया तथा मुक्त हो गए। इनके स्थान पर कोई कच्चे मन का साधक होता तथा अंगारो से डर कर भाग खडा होता, तो उन्माद दीर्घकालिक रोगातक या केवलीप्ररूपित धर्म से विच्युति होते क्या समय लगता ? अत. सोमिल ने अपने क्रूर अध्यवसायो के कारण अशुभ फल ही पाया।

३२ तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमि वयासी—'से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी 'जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए अणुप्पविसम पासित्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ। ता तुमं जाणिज्जासि एस णं से पुरिसे।'

अर्थ-(भगवान् ने घातक पुरुष का नाम तो बताया नही, बताने का कल्प भी नही है, पर उसका पता तो लगे, भावना से) कृष्ण ने पूछा-'भगवन् ! उस पुरुष को मैं जानूंगा ?' प्रभु ने फरमाया-'अभी द्वारिका नगरी मे ज समय जो पुरुष तुम्हें देखते ही खड़ा-खड़ा ही मृत्यु को प्रा हो जाय, उसी को तुम गजसुकुमाल का घातक जान लोगे

३३ तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वं णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव आभिसेयं हत्थिरय तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ, दुरुहि जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव पहारे गमणाए।

तएणं तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जाव जल अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे। एवं ख कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं पायवंदए णिग्गए त णायमेयं अरहया विण्णायमेयं अरहया सुयमेयं अरह

सिद्धमेयं अरहया भविस्सइ, कण्हस्स वासुदेवस्स तं ण णज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केणवि कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स बारवइं णयरिं अणुप्पविसमाणस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसि हव्वमागए।

तएणं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीए ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ, करित्ता धरणितलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति सण्णिवडिए।

तएणं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ पासित्ता एवं वयासी—'एस णं भो देवाणुप्पिया! से सोमिले माहणे अपत्थियपत्थिए जाव परिवज्जिए। जेण ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।' त्ति कट्टु सोमिल माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता तं भूमिं पाणिएणं अब्भोक्खावेइ अब्भोक्खावित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए, सयं गिहं अणुप्पविट्ठे।

एवं खलु जंबू! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

अर्थ—भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी को वंदना-

नमस्कार कर भ्रात-शोक से खेदित कृष्ण हाथी पर बैठ
अपने भवन जाने को रवाना हुए ।

इधर सूर्योदय होने पर सोमिल ब्राह्मण को विचार हु
कि कृष्ण वासुदेव भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी को वंद
नमस्कार करने गये है । भगवान् तो सभी बाते सामान
विशेष रूप से जानते है, उनसे तो कोई बात छुपी है नहीं
शायद कृष्ण वासुदेव को ज्ञात हो गया तो वे मुझे न जाने कि
कुमौत से मारेगे । इस कल्पना से सोमिल भयभीत एवं उद्वि
हो गया । अपने घर से निकला तथा द्वारिका नगरी से भा
जाने का संकल्प कर गली-कूचों से निकलने लगा । इधर भ्रा
मुनि के अकाल-निर्वाण से खेदित कृष्ण ने राजमार्गो का रास्त
छोड़ गली-कूचों से ही जाने का विचार कर लिया । अचान
दोनो का समागम हो गया तथा कृष्ण को देखते ही सोमि
एकदम भयभीत हो कर वही खड़े-खडे मर गया और उसक
शरीर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा ।

उपस्थित लोगो से कृष्ण ने कहा—'हे देवानुप्रियो ! मेरे
सहोदर लघुभ्राता एवं अरिष्टनेमि स्वामी के अंतेवासी गज
सुकुमार अणगार को अकाल में काल का ग्रास बनाने वाल
हत्यारा, यही अप्रार्थित का प्रार्थी, लज्जा आदि से रहि
सोमिल ब्राह्मण है ।' यह कह कर चाण्डालों द्वारा उसका श
घसीटवा कर बाहर फिकवाया तथा शव स्पर्शित भूमि को ज
प्रक्षालन द्वारा शुद्ध करवा कर कृष्ण अपने भवन मे आये ।

श्री सुधर्मा स्वामी ने श्री जंबू स्वामी से यह अध्यय

ुना कर कहा कि श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष को संप्राप्त महावीर वामी ने तीसरे वर्ग के आठवे अध्ययन के ये भाव फरमाये है।

**विवेचन**—विवेक-ज्योति लुप्त होने पर अपराधो का वीज वपन ोता है। सोमिल को यदि अगारे डालने से पूर्व भय एवं उद्वेग हो जाता था तीर्थकरो की सर्वज्ञता ध्यान मे आती, तो कितना अच्छा रहता? देशा-प्रतिलेखन करते समय उसे प्रभु के अनन्त चक्षुओ का ध्यान नही ाया। तेजपुञ्ज कृष्ण के कोप का ध्यान नही आया। क्या इस प्रसग े वहुत कुछ सिखे जाने की गुजाईश नही है?

भगवान् तो अनत क्षमा के पुञ्ज थे, पर कृष्ण महाराज शासक े। 'भविष्य मे यदि कोई सत-सती की कदर्थना करेगा तो उसको कठोर-म दण्ड मिलेगा।' इस वात की शिक्षा देने के लिए तथा अपनी कोप शान्ति े लिए सोमिल के शव की दुर्गति करवाई। जिन-शासन एव जन-शासन े सिद्धातो का अतर समझने के लिए, केवली और छद्मस्थ की भेद-रेखा का अध्ययन करने के लिए, क्षमा एव क्रोध, प्रतिशोध एवं आत्मशान्ति के परस्पर विरोधी पहलुओ पर विचारणा के लिए प्रकृत अध्ययन अत्यत सहायक है। आक्रोश, कुण्ठा, तनाव, वदमिजाजी आदि मानसिक रोगो का परि-हार आत्मिक शान्ति एव समाधि का उत्तरोत्तर विकास कर के यहाँ तक किया जा सकता है कि सिर पर जाज्वल्यमान अगारे रहते हुए भी मन म परम शान्ति की सरिता वहती रहे। इसके लिए यह स्पष्ट उदाहरण है। हम सव गजसुकुमार वन कर परम समाधि के पथ पर उर्ध्वारोहण करे, यही अभिप्रेत है।

॥ तृतीय वर्ग. अष्टम अध्ययन समाप्त ॥



## तृतीय वर्गः नवम से तेरहवें अध्ययन तक

१ णवमस्स उक्खेवओ, एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए जहा पढमए जाव विहरइ । तत्थ णं बारवईए णयरीए बलदेवे णामं राया होत्था, वण्णओ । तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, वण्णओ । तएणं सा धारिणी सीहं सुमिणे जहा गोयमे, णवरं सुमुहे णामं कुमारे, पण्णासं कण्णाओ, पण्णासं दाओ, चोद्दस पुव्वाइं अहि-ज्जइ, वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तं चेव जाव सेत्तुंजे सिद्धे । णिक्खेवओ ।

अर्थ--नववें अध्ययन का प्रारम्भ--श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है-हे जंबू ! उस काल उस समय में पूर्व वर्णित द्वारिका नगरी थी। बलदेव राजा थे, उनकी धारिणी नामक रानी थी। उसने एक वार सिंह का स्वप्न देखा यावत् सुमुख कुमार के जन्म, बचपन, शिक्षा का वर्णन जान लेना चाहिए । पचास कन्याओं के साथ विवाह तथा दायजे का वर्णन जान लेना चाहिये । दीक्षित होकर चौदह पूर्वो का अध्ययन किया, बीस वर्ष तक दीक्षा पाली एवं संलेखना संथारा कर के शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुए । नवम अध्ययन पूर्ण ।

२ एवं दुम्मुहे वि कूवदारए वि दोण्हं वि बलदेवे पिया धारिणी माया ॥ १०-११ ॥ दारुए वि एवं चेव

**णवरं वसुदेवे पिया धारिणी माया ॥ १२ ॥ एवं अणादिट्ठी वि, वसुदेवे पिया, धारिणी माया ॥१३॥ एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।**

अर्थ—दसवे व ग्यारहवें अध्ययन के नायक दुर्मुख एवं कूपदारक कुमार है, जो बलदेव पिता एवं धारिणी रानी के अंगजात द्वारिका के राजकुमार थे। बारहवे अध्ययन के नायक दारुक एवं तेरहवे अध्ययन के नायक अनादृष्टि कुमार ये दोनो वसुदेव राजा एवं धारिणी रानी के पुत्र थे। सभी द्वारिका के निवासी थे। सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

॥ तृतीय वर्ग के तेरह अध्ययन समाप्त ॥



# चतुर्थ वर्ग

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्ण चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं सम जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! णेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

जालि मयालि उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य
पज्जुण्ण संब अणिरुद्धे, सच्चणेमी य दढणेमी

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थ वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं भं अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई ण णयरी होत्था जहा पढमे । कण्हे वासुदेवे आहेव जाव विहरइ ।

तत्थ णं बारवईए णयरीए वसुदेवे राया धारि देवी, वण्णओ । जहा गोयमो णवरं जालिकुमारे पण्ण सओ दाओ । बारसंगी सोलस्स वासा परियाओ जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे । एवं मयालि उ

**ालि पुरिससेणे वारिसेणे य । एवं पज्जुण्णे वि णवरं ण्हे पिया रुप्पिणी माया । एवं संबे वि णवरं कण्हे पया जंबवई माया । एवं अणिरुद्धे वि णवरं पज्जुण्णे पया वेदब्भी माया । एवं सच्चणेमी, णवरं समुद्दविजए पया सिवा माया । एवं दढणेमी वि । सव्वे एगगमा । वउत्थस्स वग्गस्स णिक्खेवओ ।**

अर्थ---श्री जंबू स्वामी वंदना नमस्कार कर श्री सुधर्मा वामी से पूछते है–हे भगवन् ! अन्तकृतदशा के तीसरे वर्ग े भाव मैंने सुने, चौथे वर्ग में प्रभु ने क्या भाव फरमाये हैं, ो कहिए ।

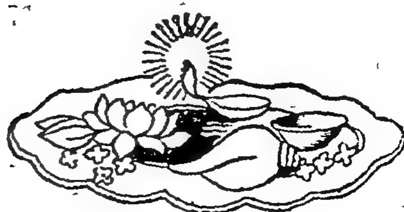
श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है---हे जंबू ! चौथे वर्ग मे मण भगवान् महावीर स्वामी ने दस अध्ययन फरमाये है– जालिकुमार २ मयालिकुमार ३ उवयालि कुमार ४ पुरुष- ेन ५ वारिसेन ६ प्रद्युम्नकुमार ७ शाम्बकुमार ८ अनिरुद्ध- ुमार ९ सत्यनेमिकुमार और १० दृढ़नेमिकुमार ।

श्री जंबू स्वामी फरमाते है---हे भगवन् ! यदि भगवान् हावीर स्वामी ने चौथे वर्ग के दस अध्ययनो का निरुपण िया है तो प्रथम अध्ययन में प्रभु ने क्या भाव फरमाये है ?

श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–पूर्ववर्णित द्वारिका नामक गरी में कृष्ण वासुदेव का साम्राज्य था । वसुदेव राजा ा धारिणी रानी थी । इनके जालिकुमार नामक पुत्र हुए जनका पचास कन्याओ के साथ विवाह एवं दत्त का वर्णन

जान लेना। विशेषता यह है कि वे द्वादशांगी के अध्येता
तथा सोलह वर्ष की दीक्षा पाल कर शत्रुन्जय पर्वत पर गौत
कुमार के समान सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए। मयालि, उवया
पुरिससेन और वारिसेन का वर्णन जालिकुमार के सदृश जान
चाहिए। पाँचों ही वासुदेव के पुत्र एवं धारिणी के उदरज
थे। छट्ठे अध्ययन के नायक प्रद्युम्नकुमार कृष्ण एवं रुक्मि
की सन्तान थे। सातवें अध्ययन के नायक शाम्बकुमार कृ
एवं जाम्बवती के पुत्र थे। अनिरुद्धकुमार के पिता प्रद्यु
कुमार एवं माता वैदर्भी थी, जिनका आठवे अध्ययन मे व
जानना चाहिए। नववें दसवें अध्ययन मे सत्यनेमि व दृढ़ने
अणगार का वर्णन है जो समुद्रविजयजी व शिवादेवी के पुत्र
तथा भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी के सहोदर भ्राता थे। स
का वर्णन सरीखा होने से सुगम ही है। यह चौथा वर्ग पूरा हुआ

श्री सुधर्मास्वामी ने फरमाया—हे जंबू ! प्रभु ने चौथे व
के उपरोक्त भाव फरमाये है।



# पंचम वर्ग : प्रथम अध्ययन

१ 'जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?'

'एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

पउमावई य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य ।
जंबुवई सच्चभामा, रुप्पिणी मूलसिरि मूलदत्ता य ॥'

'जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता । पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?'

अर्थ—श्री जंबू स्वामी ने पूछा—'हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने चतुर्थ वर्ग के जो भाव फरमाये, वे आपके श्रीमुख से मैने श्रवण किए । पाँचवे वर्ग में प्रभु ने क्या भाव फरमाये है, सो कृपा कर के कहिए ।'

श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पाँचवे वर्ग के निम्न दस अध्ययनो का कथन किया है—१ पद्मावती २ गौरी ३ गाधारी ४ लक्ष्मणा ५ सुसीमा ६ जाम्ववती ७ सत्यभामा ८ रुक्मणी ९ मूलश्री एवं १० मूलदत्ता ।

श्री जंबू स्वामी ने पुन: पृच्छा की—'हे भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने पाँचवे वर्ग के प्रथम अध्ययन के क्या भाव फरमाये है ?'

**२ एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णामं णयरी होत्था, जहा पढमे, जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई णामं देवी होत्था, वण्णओ ।**

**तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे जाव विहरइ । कण्हे णिग्गए जाव पज्जुवासइ । तएणं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठ० जहा देवई जाव पज्जुवासई । तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई देवीए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया ।**

अर्थ—श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया—हे जंबू ! द्वारिका नगरी मे श्रीकृष्ण वासुदेव का शासन था । श्रीकृष्ण के आठ अग्रमहिषियाँ थी, जिनमें पद्मावती देवी भी थी । पद्मावती रानी रूप-लावण्य मे उत्कृष्ट होने के साथ श्रेष्ठ गुणो से युक्त वर्णन योग्य थी ।

उस समय भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी का द्वारिका में पदार्पण हुआ । परिषदा एवं कृष्ण धर्म-श्रमण के लिए गए । पद्मावती देवी भी देवकी की भांति सेवा में गई तथा पर्युपासना

करने लगी। भगवान् ने धर्मकथा फरमाई तथा परिषदा वापिस चली गई।

**३ तएणं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'इमीसे णं भंते! बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए णवजोयणविच्छिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए किं मूलए विणासे भविस्सइ?' 'कण्हाइ!' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एव खलु कण्हा! इमीसे बारवईए णयरीए दुवालसजोयणआयामाए णवजोयणविच्छिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलए विणासे भविस्सइ।**

अर्थ-तव कृष्ण महाराज ने वंदन-नमस्कार कर भगवान् से प्रश्न किया-'हे देवाधिदेव! बारह योजन की लम्बी-नौ योजन चौडी यावत् प्रत्यक्ष देवलोक स्वरूप इस द्वारिका का विनाश किस निमित्त से होगा?' भगवान् ने कहा-'हे कृष्ण'! इस बारह योजन लम्बी नौ योजन चौडी प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका का विनाश मदिरा, अग्नि व द्वैपायन ऋषि के कोप से होगा।

**विवेचन**–अर्द्ध भरत के तीन खण्डो मे इतने दिन अमन-चैन की वसी वज रही थी, पर आज अचानक कृष्ण महाराज को द्वारिका के विनाश का मूल जानने की क्या आवश्यकता हुई? कृष्ण महाराज गजसुकुमार अणगार की अकाल हत्या से बहुत विचार मे पड़ गये थे। वे सोचते रहते—

'जव मेरी चढती पुण्यवानी थी तो जरासध को पराजित करके त्रिखण्डाधिपति बन गया। देवो ने मेरी सहायता की। धनपति कुबेर ने द्वारिका का निर्माण किया। आज तक कोई अप्रिय घटना नही घटी, पर यह क्या हो गया ? मेरे सगे भाई गजसुकुमार को, सिर पर धधकते अंगारे डालकर मार डाला गया। वह भी कही दूर नही राजधानी द्वारिका मे—मेरे रहते हुए ही। मेरा भाई ही होता तो बात वही तक थी, पर भगवान् अरिष्टनेमिनाथ स्वामी का अतेवासी नवदीक्षित सन्त ! उसकी यह प्राणान्त प्रक्रिया ! ! बस, द्वारिका का विनाश होने वाला है। मेरे पुण्यपुञ्ज का अब जोर नही है।'

इसीलिए तो बुद्धिमान कृष्ण ने यह नही पूछा कि विनाश होगा या नही। उन्होने सीधा यही पूछा कि विनाश कैसे होगा ?

सुना जाता है कि मदिरा को द्वारिका विनाश का कारण जान कर कृष्ण महाराज ने मद्य निषेध कर दिया तथा बची-खुची मदिरा बाहर फिकवा दी। एक वार कुछ यादव कुमार घोडे लेकर घूमने गए। प्यास लगी तो गड्ढे मे रही शराब पी ली। वही द्वैपायन ऋषि तपयुक्त ध्यान कर रहे थे। मदिरा के नशे मे उनके ऊपर घोडे कुदाने लगे तथा वहीं एक मरा सर्प पड़ा था, उसे ऋषि के गले मे डाल दिया और उसे मारा। इस अभद्र चेष्टा से ऋषि कुपित हुए। उन्होने द्वारिका विनाश करने का निदान कर लिया। मालूम पडने पर कृष्ण बलदेव ने उन्हे निदान त्यागने की प्रार्थना की पर ऋषि ने कहा—तुम दोनो बच सकोगे।

**४ तएणं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे—'धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमिप्पभिइओ कुमारा, जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाइत्ता अर-**

**हओ अरिट्ठणेमिस्स, अंतियं मुण्डा जाव पव्वइया अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए णो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।**

अर्थ–द्वारिका विनाश के समाचार जान कर कृष्ण महाराज को विचार हुआ—'धन्य है वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, शाम्ब, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सत्यनेमि, दृढनेमि आदि यदुकुमार––जिन्होने स्वर्ण, रजत, धन-धान्य राज्य राष्ट्र अन्तपुर आदि का त्याग कर भगवान् अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है। मै अधन्य, अपुण्य, अकृतपुण्य हूँ जो राज्य राष्ट्र अन्तपुर और मानवीय कामभोगो मे गृद्ध, आसक्त एवं मूर्च्छित हूँ तथा भगवान् से दीक्षा नही ले पा रहा हूँ।'

**५ 'कण्हाइ !' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'से णूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए समुप्पण्णे–धण्णा णं ते जालि जाव पव्वइत्तए ? से णूणं कण्हा ! अयमट्ठे समट्ठे ?' 'हंता अत्थि।'**

अर्थ––भगवान् ने कृष्ण को संबोधित कर फरमाया–'हे कृष्ण ! क्या तुझे इस प्रकार विचार हुआ कि धन्य है जालि आदि यावत् मैं दीक्षित नही हो पा रहा हूँ। क्या यह बात सत्य है ? 'श्रीकृष्ण बोले–हाँ भगवन् ! सत्य है।'

**६ 'तं णो खलु कण्हा ! एवं भूए वा भव्वं वा**

**भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्संति ।' 'हे केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ—ण एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति ? "कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे णियाण-कडा, से एएणट्ठेणं कण्हा एवं वुच्चइ—णं एवं भूयं जाव पव्वइस्संति ।**

अर्थ—भगवान् ने फरमाया—'हे कृष्ण ! पहले कभी ऐसा हुआ नही, अभी होता नही और भविष्य मे कभी होगा भी नही कि वासुदेव घर-बार छोड़ कर संयम धारण करे।' कृष्ण ने पूछा—'हे भगवन् ! वासुदेव संयम धारण नही करते, इसका क्या कारण है?' भगवान् ने फरमाया—'सभी वासुदेव पूर्वभव से निदान-कृत होते है। अतः वे उस भव मे संयम लेने मे समर्थ नही होते।'

**विवेचन**—संयम धारण करने से स्वर्ग-अपवर्ग की प्राप्ति होती है। मैने पूरे जीवन भर अनेको युद्ध किए, भोगो मे डूबा रहा, फिर मेरा अगला जन्म कैसा होगा ? यह जानने के लिए कृष्ण महाराज पूछते है।

**७ तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमि एवं वयासी—'अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?'**

**तएणं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-'एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए णयरीए सुरग्गिदीवायणकोवणिद्दड्ढाए अम्मापिइणियगविप्पहूणे रामेण-बलदेवेणसद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामो-**

रखाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसबवणकाणणे णग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थपच्छाइयसरीरे जरकुमारेणं तिक्खेणं, कोदंड-विप्पमुक्केणं, इसुणा वामे पाए विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए जाव उववज्जिहिसि।'

तएणं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म ओहय जाव झियाइ।

अर्थ—कृष्ण ने पूछा—"हे भगवन्! मैं यहां से काल कर के कहाँ जाऊँगा? कहाँ उत्पन्न होऊँगा?"

प्रभु ने फरमाया—'हे कृष्ण! सुरा, अग्नि व द्वीपायन ऋषि के कोप के कारण जब द्वारिका का नाश होगा तब तुम सभी ज्ञाति, निजक, स्वजनो से रहित हो कर रामबलदेव के साथ दक्षिण समुद्र के किनारे पांचो पाण्डवो द्वारा बसाई गई पाण्डु-मथुरा की ओर जाओगे। कोशाम्र वन मे तुम पीताम्बर ओढे एक वट वृक्ष की छाया मे सोये हुए होगे तब जराकुमार के द्वारा धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाण से तुम्हारा बायाँ पाँव विध जायेगा तथा उसी समय काल कर के तीसरी बालुका-प्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होओगे।

यह सुन कर श्रीकृष्ण आर्त्तध्यान करने लगे।

८ 'कण्हाइ!' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—'मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहय जाव

ज्झियाहि । एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबू-द्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे णयरे बारसमे अममे णामं अरहा भविस्ससि । तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलपरियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि० ।

अर्थ–श्रीकृष्ण को संबोधित करते हुए भगवान् अरिष्ट-नेमि स्वामी ने फरमाया–'हे देवानुप्रिय ! तुम आर्त्तध्यान मत करो । तीसरी पृथ्वी से निकल कर इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी मे, पुंड्र जनपद मे, शतद्वार नगर मे अमम नामक बारहवें तीर्थंकर बन कर बहुत वर्षो तक केवली-पर्याय का पालन कर सिद्ध बुद्ध मुक्त यावत् सभी दुःखो से प्रहीण बन जाओगे ।'

९ तएणं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० अप्फोडेइ, अप्फोडित्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवलिं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सिंहासणे

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ, णिसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा एवं वयह—"एव खलु देवाणुप्पिया! बारवईए णयरीए दुवालसजोयण-आयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूले विणासे भविस्सइ, तं जो णं देवाणुप्पिया! इच्छइ बारवईए णयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ पच्छाउरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तं अणुजाणइ महया इड्ढिसक्कारसमुदएण य से णिक्खमणं करेइ," दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसइत्ता मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह।' तएणं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

अर्थ—भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी से अपने भविष्य का वृतात सुन कर कृष्ण अत्यंत प्रसन्न एवं संतुष्ट हुए। हर्षावेग मे भुजा ठोकने लगे, भुजा ठोक कर जोर-जोर से शब्द करने लगे, जोर-जोर से हर्ष ध्वनि कर तीन चरण पीछे हट कर सिह्नाद किया। फिर भगवान् को वंदना-नमस्कार कर हस्तिरत्न

पर आरुढ़ होकर द्वारिका नगरी में अपने महल में आये। हा
से उतर कर सभाभवन में आकर अपने सिंहासन पर बैठे त
घोपणा करने वाले कोटुम्बिक पुरुषो को वुला कर इस प्रक
कहा—

'हे देवानुप्रियो ! जाओ। द्वारिका नगरी के सभी त्रि
चतुष्क, चत्वर आदि सार्वजनिक स्थानो पर जोर-जोर
निम्न उद्घोषणा करो कि—

"हे देवानुप्रियो ! इस बारह योजन लम्वी यावत् प्रत्य
देवलोक के समान द्वारिका नगरी का सुरा, अग्नि व द्वीपाय
ऋषि के कारण विनाश होगा। इस द्वारिका नगरी के को
भी राजा, युवराज, ऐश्वर्य शाली सेठ, मंत्री, राजा का प्रि
छोटे गाँव का स्वामी, गृहपति, इभ्य सेठ, रानी, राजकुमा
राजकुमारी, सेनापति, सार्थवाह आदि कोई भी जीव भगवा
अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के समीप प्रव्रजित होना चाहते हो
उन्हे कृष्ण वासुदेव दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करते है
दीक्षा लेने वाले के पीछे जो कोई वाल, वृद्ध या रोगी हों
उनका पालन-पोषण श्रीकृष्ण स्वयं करेगे। दीक्षा लेने वा
का महान् दीक्षा-महोत्सव भी कृष्ण महाराज की तरफ
होगा।"

इस प्रकार तुमुल शव्दों में यह घोपणा दो-तीन वार क
के मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।'

कोटुम्बिक पुरुषों ने ऐसा ही किया तथा आज्ञानुसा
कार्य कर दिए जाने की सूचना की।

**विवेचन**–श्री कृष्ण महाराज की धर्म-दलाली की प्रशसा जितनी जाय थोडी है । इस ऐतिहासिक उद्घोषणा को सुन कर अनेक भव्य त्माओ ने अपना कल्याण किया ।

श्रीकृष्ण महाराज ने तो द्वारिका से जितने जीवो का उद्धार हो ता था–किया एवं पूर्ण सहायता दी, पर हमे अपनी द्वारिका के विषय भी विचार करना हे–

हमारा शरीर भी द्वारिका है । नव द्वारो वाली इस द्वारिका का ने निर्माण किया तथा सार-सम्भाल भी की । नव द्वारो से सदा ही वित्र रस झराने वाली यह द्वारिका भी शाश्वत रहने वाली नही है । भी नष्ट होगी । अग्नि की भेट चढेगी । इस देह-द्वारिका का भी ाश होगा । हमे गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिए कि द्वारिका ा के पहले हमे क्या-क्या करना है ?

**१० तएणं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरहं रिट्ठणेमिं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं यासी—**

**'सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं भे वयह जं णवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं ापुच्छामि, तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव व्वयामि ।' 'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध रेह ।'**

अर्थ–भगवान् के पास से धर्म सुनकर पद्मावती देवी र्षित-संतुष्ट हुई एवं निवेदन किया–

'हे भगवन् ! मैं इस निर्ग्रंथ-प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करती हूँ। यह निर्ग्रंथ-प्रवचन मुझे वार-वार इच्छि है, वैसा ही है, जैसा आप फरमाते है। मैं कृष्ण वासुदेव पूछ कर आप के पास दीक्षित होने की भावना रखती हूं। भगवान् ने फरमाया–'जैसे सुख हो वैसे करो, धर्म कार्य में प्रतिबंध मत करो, क्योकि जीवन क्षण-भंगुर है।'

**११ तएणं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई णयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–'इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि।' 'अहासुहं देवाणुप्पिए!'**

**तएणं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! पउमावईए देवीए महत्थं णिक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता एवं आणत्तिं पच्चप्पिणह। तएणं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।**

अर्थ–धार्मिक काय मे प्रयुक्त किए जाने वाले श्रेष्ठ रथ में वैठ कर पद्मावती रानी सहस्राम्रवन उद्यान से द्वारि

कुमारी में अपने महल में आई। तथा कृष्ण वासुदेव के पास आकर हाथ जोड़कर विनय पूर्वक निवेदन किया–

'हे देवानुप्रिय ! यदि आप आज्ञा दे तो मैं भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी के समीप दीक्षित होना चाहती हूँ।' कृष्ण वासुदेव ने कहा–'हे देवानुप्रिया ! जैसे सुख हो, वैसे करो।'

पद्मावती देवी की दीक्षा की दृढ़ भावना जानकर कृष्ण वासुदेव ने कोटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर पद्मावती के योग्य महान् अभिनिष्क्रमण उत्सव की तैयारी करने का आदेश दिया। विनीत सेवको ने आज्ञानुसार सारी तैयारी कर आज्ञा प्रत्यर्पित की।

१२–तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहइ, दुरुहित्ता, अट्ठसएणं सोवण्णकलसेणं जाव णिक्खमणाभिसएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकार-विभूसियं करेइ, करित्ता पुरिससहस्सवाहिणीं सिवियं दुरुहावेइ, दुरुहावित्ता बारवईए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहस्सम्बवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ, पउमावई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ।

तएणं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पुरओ कट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ-णमंसइ, वंदित्ता-णमंसित्ता एवं वयासी–

**'एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई णामं देवी इट्ठा, कंता, पिया, मणुण्णा, मणामा, अभिरामा, जीविय ऊसासा, हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फंविव दुल्लहा सवण-याए किमंग ! पुण पासणयाए ? तण्णं अहं देवाणु-प्पियाणं सिस्सिणी भिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवा-णुप्पिया ! सिस्सिणी भिक्खं ।' 'अहासुहं ।'**

अर्थ—कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पट्ट पर विठाया। एक सौ आठ स्वर्ण कलशों यावत् सारे स्नानादि का वर्णन जानना । अपने हाथ से सारे गहने आदि पहनाए पुरुषसहस्र वाहिनी पालकी पर विठाया एवं रेवतक पर्वत पर स्थिर सहस्राम्र वन उद्यान में गए। पद्मावती रानी शिविका से उतरी।

तब कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती रानी को आगे किया तथा अरिष्टनेमिनाथ स्वामी के समीप लाकर वंदना नमस्कार कर निवेदन किया—

'हे भगवन् ! यह पद्मावती रानी मेरी अग्रमहिषी है। यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनगमती एवं अभिराम है। जैसे श्वास के विना जीवन नही रहता वैसे ही मेरे लिए यह श्वास के समान है, मेरे हृदय को आनंदित करने वाली है। उदुम्बर पुष्प के समान इसका नाम भी सुनना मुश्किल है फिर दर्शन की तो वात क्या है ? परन्तु यह ससार-भय से उद्विग्न है, अत. मैं आप देवानुप्रिय को यह शिष्या भिक्षा प्रदान करता हूँ। आप इसे स्वीकार करने का अनुग्रह करावें।' प्रभु ने स्वीकृति प्रदान की ।

१३–तएणं सा पउमावई देवी उत्तरपुरत्थिमं
इसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणा-
ंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ,
रित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ,
वागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ-णमंसइ, वंदित्ता
मंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं भंते ! जाव धम्ममाइ-
क्खयं । तएणं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव
व्वावेइ, सयमेव मुंडावेइ, सयमेव जक्खिणीए अज्जाए
सस्सिणीं दलयइ । तएणं सा जक्खिणी अज्जा पउ-
ावइं देविं सयं पव्वावेइ जाव संजमियव्वं । तएणं सा
उमावई जाव संजमइ, तएणं सा पउमावई देवी अज्जा
ाया, इरियासमिया जाव गुत्तबंभयारिणी ।

तएणं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए
ंतियं सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ,
हिज्जइत्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं मासद्ध-
ासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा
हरइ । तएणं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं
ीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए
ंलेहणाए अप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अण-
णाइं छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव
मट्ठं आहारेइ, चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिद्धा ।

अर्थ-तव पद्मावती रानी ने उत्तर पूर्व के दिशा-भाग जाकर स्वयं गहने आदि उतार कर पंचमोष्टिक लोच कि साध्वी वेश धारण की हुई वंदना नमस्कार कर प्रभ निवेदन करती है, यह जगत जल रहा है यावत् आप स्व मुझे प्रव्रजित कर शिक्षा प्रदान करें।'

तब भगवान् ने प्रव्रज्या प्रदान की, कषायादि का मु समझाया तथा यक्षिणी आर्या को शिष्या रूप मे प्रदान किया यक्षिणी आर्या ने प्रव्रजित किया, मुण्डित किया तथा संयम समाचारी सिखाई। तब वह पद्मावती आर्या ईर्यासमिति यु यावत् ब्रह्मचारिणी बन गई।

पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या के समीप ग्यारह अं का अध्ययन किया तथा उपवास बेला, तेला, अर्द्ध मासखम मासखमण आदि विविध तपस्याओ से आत्मा को भावित किया बीस वर्ष तक प्रव्रज्या पाल कर एक मास की संलेखना कर अपने प्रयोजन को साध लिया यानि सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुई

**विवेचन**-कृष्ण महाराज ने पद्मावती रानी के लिए युद्ध कि था। पद्मावती रानी कृष्ण महाराज के लिए अत्यन्त प्रीतिपात्र थी, पर पत्थर का कलेजा कर के पद्मावती को संयम स्वीकार ने की तत्क्षण अनु दे दी। यदि उन्हे द्वारिका विनाश एवं अपने भविष्य की विस्तृत जान कारी नही होती तो शायद वे पद्मावती रानी की मान-मनुहार करते त आज्ञा देने मे ननुनच भी करते, पर आज आज्ञा मागते ही मना न किया। उनकी उद्घोषणा हाथी के दाँत दिखाने के ओर व खाने के अं की तरह नही थी कि नागरिक प्रव्रज्या ले तो सहर्ष आज्ञा एवं अन परिजन लेवे तो तरह-तरह की अन्तराय व बाधाये।

जीवनभर कृष्ण महाराज ने पद्मावती की सुरक्षा की। उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा, पर यह तो लौकिक कर्त्तव्य है। ऐसा बहुत से करते है। लोकोत्तर कर्त्तव्य तो यह है कि व्यक्ति अपने परिजनो को धर्म मे सहायता देकर आगे बढाये। आगे न बढा सके तो टाग पकड़ कर पीछे तो नही खीचे।

धर्म-प्रेम की उत्कटता के कारण उन्होने पद्मावती रानी को हाथो से स्नान करवाया, विभूषित किया एवं प्रभु के पावन पद-कंजो मे ले गए। पद्मावती रानी के लिए हृदयोद्‌गारो मे किंचित् मात्र भी अतिशयोक्ति नही है। कर्त्तव्य निभा कर आदर्श पति का रूप प्रकट करने मे कृष्ण महाराज ने कोई कसर नही रखी।

"मै तो चक्की मे पिस रहा हूँ। सारा ससार पिस रहा है। कोई भाग्यवान दाना चक्की से उछल कर बाहर निकले तो उसे सहायता दी जाय," इसी महान अनुकम्पा से प्रेरित उनकी उद्‌घोषणा उनके ज्योतिमय जीवन की स्वर्णिम आभा है।

पद्मावती रानी ने सयम स्वीकार करके राजरानी पद को एकदम भुला दिया। 'मै सुकुमारी हूँ, मुझसे तपस्या नही की जाती, मै रूक्ष सयम का, परीपहो एवं उपसर्गो का पालन नही कर सकती।' यह भावना उनके नजदीक भी नही आई। सयम स्वीकारते ही गुरुणी की सेवा मे अपने को अर्पित कर दिया। स्वाध्याय एवं तपस्या की भट्टी मे अपने को होम दिया। इंगित एव आकारो पर जीवन न्योछावर कर देने वाले विरले साधको मे पद्मावती आर्या का नाम अग्रगण्य है।

घडा कितना ही सुन्दर एवं सुघड क्यो न हो, यदि उसने आच नही सही, अग्नि की लाल लपटो मे वह पका नही तो उसकी कोडी कीमत भी नही है। यदि भूलचूक से उस कच्चे घडे मे जल डाल भी दिया गया तो जल के साथ वह भी नष्ट हो जायेगा। साध्वी पद्मावतीजी

ने तप एव आज्ञा की आच मे जीवन-घट को पकाया एव इप्सितार्थ की सिद्ध कर ली ।

जब कुसुमकोमल राजरानियाँ भी सयम की शूलसकुल वीथिया पार कर सकती है तो वे वर्तमान साधको के थके हारे, भूले-भटके जीवन के लिए करारी चुनोती क्यो न हो ?

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

## पंचम वर्ग: शेष नौ अध्ययन

२ उक्खेवओ य अज्झयणस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई णयरी, रेवयए पव्वए, णंदणवणे उज्जाणे । तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था । तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी वण्णओ । अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे । कण्हे णिग्गए गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए । तएणं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा ।

एवं ३ गंधारी ४ लक्खणा ५ सुसीमा ६ जम्बुवई ७ सच्चभामा ८ रुप्पिणी । अट्ठ वि पउमावई सरिसयाओ, अट्ठ अज्झयणा ।

उक्खेवओ य णवमस्स । तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए णयरीए, रेवयए पव्वए, णंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया । तत्थ णं बारवईए णयरीए कण्हस्स वासु-

देवस्स पुत्तए जंबवईए देवीए अत्तए संबे णामं कुमारे होत्था । अहीण० । तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरि णामं भारिया होत्था, वण्णओ । अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे, कण्हे णिग्गए । मूलसिरि वि णिग्गया, जहा पउमावई, णवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि जाव सिद्धा । एवं मूलदत्ता वि ।

॥ पंचमो वग्गो समत्तो ॥

अर्थ–द्वितीय अध्ययन का प्रारम्भ–उस काल उस समय में द्वारिका नामक नगरी थी, रेवतक पर्वत व नंदनवन उद्यान का वर्णन पूर्वोक्त है। कृष्ण महाराज के गोरी नामक पटरानी का वर्णन जानने योग्य था । भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी का द्वारिका में समवसरण हुआ । कृष्ण महाराज सेवा मे पधारे । पद्मावती की भाति गौरी रानी भी गई। धर्म सुन कर वैराग्यवती हुई, संयम स्वीकार किया एवं पद्मावती रानी के समान सारा वर्णन जानना चाहिए ।

इसी प्रकार गाधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्ववती, सत्यभामा एवं रुक्मिणी, ये आठो श्रीकृष्ण की अग्रमहिषिया थी । भगवान् अरिष्टनेमि स्वामी से धर्म श्रवण किया । कृष्ण महाराज ने सहर्ष दीक्षित होने की अनुज्ञा प्रदान की । सारा वर्णन पद्मावती रानी के समान जानना यावत् सिद्ध, वुद्ध, मुक्त और परिनिवृत्त हुई ।

नववें अध्ययन का प्रारंभ—द्वारिका नगरी मे

श्रीकृष्ण का शासन ज्ञातव्य है। उनकी अग्रमहिषी जाम्बवती के पुत्र शाम्ब कुमार की रानी मूलश्री ने भी धर्म सुना। शाम्ब कुमार पहले ही दीक्षित हो चुके थे। अतः भगवान् से मूलश्री रानी ने निवेदन किया कि मेरे श्वसुर कृष्ण महाराज से आज्ञा लेकर संयम लूंगी। यावत् संयम स्वीकार किया एवं सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई। मूलदत्ता भी शाम्ब कुमार की पत्नी थी। इस प्रकार दसों राजरानियों ने संयम स्वीकार किया एवं निर्वाण लाभ लिया।

**विवेचन**–पाँच वर्गों मे केवल एक परिवार के ५१ महान् पुरुषों के जीवन चरित्रो का परिचय पढने मे आया। इस अवसर्पिणी काल में यादव वंश अपने आप मे एक गौरवशाली वंश रहा है, जिसकी समानता नही मिलती। इस पर सोने मे सुगध यह कि इन एकावन महान् आत्माओं की नैया के खिवैया भी यदुकुलतिलक भगवान् अरिष्टनेमि है जो समुद्र विजय एवं शिवानदा के लाडले है। अन्तकृतदशा के पाँचो वर्गों के अतिरिक्त भी आगमो मे यत्र तत्र यादव वंश के महान आत्म-सुभटो का विपुल परिचय उपलब्ध है। इनके गौरवमय जीवन से जितना कुछ सीखा जाय कम ही है।

॥ पंचम वर्ग समाप्त ॥



# छठा वर्ग

जइणं भंते ! छट्ठमस्स उक्खेवओ। णवरं सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

मकाई किंकमे चेव, मोग्गरपाणी य कासवे।
खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे ।।
वारत्त सुदंसण पुण्णभद्द, सुमणभद्द सुपइट्ठे मेहे।
अइमुत्ते य अलक्खे, अज्झयणाणं तु सोलसयं ।।

जइ णं भंते ! सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया। तत्थ णं मकाई णामं गाहावइ परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव गुणसिलए जाव विहरइ, परिसा णिग्गया तएणं से मकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव, इमोवि जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवित्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

तए णं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महा-

वीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइया
एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । सेसं जहा खंदयस्स, गुण
रयणं तवोकम्मं, सोलसवासाइं परियाओ, तहेव विपु
सिद्धे ॥१॥

दोच्चस्स उक्खेवओ, किंकमे वि एवं चेव जा
विपुले सिद्धे ॥२॥

अर्थ–छठे वर्ग का प्रारंभ–हे भगवन् ! छट्ठे वर्ग मे प्र
ने क्या भाव फरमाये है। जंबू स्वामी के प्रश्न के उत्तर
सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–छठे वर्ग में निम्न सोलह अध्यय
का निरूपण किया है–(१)मकाई (२) किंकम (३) मुद्ग
पाणि (४) काश्यप (५) क्षेमक (६) धृतिधर (७) कैला
(८) हरिचंदन (९) वारत्त (१०) सुदर्शन (११) पूर्णभ
(१२) सुमनोभद्र (१३) सुप्रतिष्ठ (१४) मेघ (१५) अ
मुक्तक (१६) अलक्ष ।

जंबू स्वामी पूछते है–छठे वर्ग के प्रथम अध्ययन में श्रम
भगवान् महावीर स्वामी ने क्या भाव फरमाये है ?

सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–इस अवसर्पिणी काल के च
आरे मे राजगृह नामक नगर था। उस नगर के उत्तर
दिशा-कोण में गुणशीलक नामक उद्यान था। उस समय श्रेणि
महाराज वहाँ शासन करते थे। उस समय वहाँ मकाई नाम
गाथापति–सेठ रहते थे जो धनाढ्य, ऐश्वर्यसम्पन्न एवं कि
से दबने वाले नही थे ।

किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का व

पदार्पण हुआ जो धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष की अभिलाषा वाले थे। राजगृह की जनमेदिनी जिनेन्द्र आगमन का वृतात जानकर दर्शन एवं धर्म श्रवण के लिए गुणशीलक उद्यान मे समुपस्थित हुई। मकाई गाथापति भी (श्री भगवती सूत्र शतक १६ उद्देशक ५ वर्णित गंगदत्त के समान) उपस्थित हुए। मकाई ने प्रभु से निवेदन किया कि मै ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का भार सौप कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ। प्रभु ने फरमाया–जैसा सुख हो, वैसा करो, हे देवानुप्रिय! धर्म कार्य मे प्रमाद मत करो।

मकाई ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौप कर उससे पूछ कर प्रव्रज्या के लिए तत्पर हुए। पुत्र ने उन्हे पुरुषसहस्र वाहिनी शिविका मे विठा कर महान् अर्थ-व्यय वाला महोत्सव कर दीक्षित करवाया। अब मकाई ईर्यासमितियुक्त यावत् (उववाई सूत्र वर्णित) अणगार हो गये।

तथारूप के (गुणधारी) स्थविरो के पास मकाई अणगार ने सामायिक आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। भिक्षु-प्रतिमाओ का पालन एवं गुणरत्न-संवत्सर तपकर्म पूर्ववत् जान लेना चाहिए। स्कंदक अणगार के समान सारा वर्णन ज्ञातव्य है। सोलह वर्ष की श्रमण-पर्याय का पालन कर विपुलगिरि पर संथारा संलेखना सहित सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

दूसरे अध्ययन का प्रारंभ–सारा वर्णन मकाई के समान जान लेना विशेपता यह है कि इस अध्ययन के नायक किकम

अणगार थे। बाकी सारी समानता जान लेना चाहिए।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

## षष्ठम वर्गः तृतीय अध्ययन

१ तच्चस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए सेणिए राया चेल्लणा देवी। तत्थ णं रायगिहे णयरे अज्जुणए णामं मालागारे परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स बंधुमई णामं भारिया होत्था, सुकुमाल पाणिपाया।

तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स णयरस्स बहिया एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था, किण्हे जाव णिकुरंबभूए दसद्धवण्णकुसुमकुसुमिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जयपज्जयपिइपज्जयागए अणेगकुलपुरिसपरंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, पोराणे, दिव्वे, सच्चे, जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।

अर्थ–तीसरे अध्ययन का प्रारंभ यावत् श्री सुधर्मास्वामी ने फरमाया–हे आयुष्मान् जंवू ! उस समय राजगृह नामक नगर के वाहर ईशान कोण मे गुणशीलक नामक उद्यान था। वहाँ के नरेश श्रेणिक महाराज के चेलना नामक रानी थी। उस राजगृह नगर मे धनाढ्य वैभवशाली यावत् किसी से पराभूत नही होने वाला अर्जुन नामक माली भी निवास करता था। उसके वंधुमती नामक भार्या वर्णन करने योग्य थी।

अर्जुनमाली की मालिकी मे एक वहुत वडा फूलो का वगीचा था जो राजगृह के वाहर अवस्थित था। वह वगीचा दूर से काला यावत् रमणीय दिखाई देता था तथा पाचो रंगो के सुन्दर सुरभित सुमनो से लदा-फदा रहता था। अत. दर्शक गणो के लिए दर्शनीय, आसेवनीय एवं सुखकारी था।

उस वगीचे के पास ही मुद्गरपाणि यक्ष का वहुत प्राचीन प्रसिद्ध एवं लोक आस्था का प्रतीक यक्षायतन था। अर्जुनमाली के पिता, दादा, परदादा आदि अनेक पीढियाँ उस यक्ष की भक्ति करती आ रही थी। उस मुद्गरपाणि यक्ष की प्रतिमा के साथ मे हजार पल (वजन विशेष) का भारी लोहे का मुद्गर था अत 'मुद्गरपाणि' के रूप मे ही प्रसिद्धि थी। लोक दृष्टि में पूर्णभद्र यक्षायतन के समान वह मुद्गरपाणि यक्षायतन भी वहुत पूजनीय एवं सम्मान्य था।

**२ तएणं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिजक्खस्स भत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं**

पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाइ, गहित्ता जेणेव मोग्गर-पाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फुच्चयणं करेइ करित्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, करित्ता तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

अर्थ—वह अर्जुन मालाकार बचपन से मुद्गरपाणि य का परम भक्त था। उसकी देनंदिन चर्या ही यह थी कि सुब सुबह फूल भरने की छावडियाँ ले कर वह राजगृह से (अप घर से) निकल कर बगीचे मे आता, फूल चुनता, श्रेष्ठ विक सित कुछ फूलो से यक्ष की प्रतिमा की पूजा करता, घुटने ए मस्तक नमा कर श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता। इस प्रकार करं फिर राजमार्ग पर फूल बेचता एवं आजीविकोपार्जन करत हुआ रहता था।

३ तत्थ णं रायगिहे णयरे ललिया णामं गोट्ठी परिवसइ अड्ढा जाव अपरिभूया जं कयसुकया यावि होत्था।

अर्थ—उस राजगृह में 'ललित' नामक मित्र-मण्डली थी जिसके सदस्य आढ्य यावत् अपराभूत थे। किसी समय राजा का कोई कार्य संपादित कर देने के कारण राजा द्वारा प्रसन्न

मन से यह वरदान उसे मिल गया था कि वे अपनी इच्छानुसार कार्य करने मे स्वतंत्र है। राज्य की ओर से उन्हे कोई दण्ड नही दिया जायेगा। अत: वह मित्र-मण्डली आवारागर्दी करती हुई मनमाना व्यवहार करती थी।

४ तएणं रायगिहे णयरे अण्णया कयाइं पमोए घुट्ठे यावि होत्था। तएणं से अज्जुणए मालागारे कल्लं पभूयतराएहिं पुप्फेहिं कज्जमित्ति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धि पच्छियपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फुच्चयं करेइ।

अर्थ---किसी समय राजगृह नगर मे किसी सार्वजनिक उत्सव की आयोजना की गई। अर्जुन ने विचार किया कि उत्सव के कारण कल पुष्प-विक्रय विशेष होगा, अत अधिक फूलो को चुनने के लिए बंधुमती भार्या को भी साथ लेकर बास की डलियाये (छाबडियाँ) ले कर बगीचे की ओर सुबह तडके ही निकला तथा दोनो फूल चुनने लगे।

५ तएणं तीसे ललियाए गोट्ठिए छ गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खायतणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति। तएणं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धि पुप्फच्चयं करेइ, करित्ता

**अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ ।**

अर्थ–अर्जुन व बंधुमती के आने के पूर्व ही ललित गोष्ठी नामक उस मित्र-मण्डली के छह सदस्य वहाँ मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन मे आये हुए मनोविनोद कर रहे थे। अर्जुन व बंधुमती फूल चुन कर श्रेष्ठ फूलों से यक्ष-पूजा के लिए यक्षायतन की ओर जाने लगे।

**६ तएणं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी—"एस खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं अज्जुणयं मालागारं अवओडयबंधणयं करित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा णं विहरित्तए।" त्ति कट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु णिलुक्कंति णिच्चला णिप्फंदा तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति ।**

अर्थ–छहो गोठीले पुरुषों ने अर्जुन व बंधुमती को वर्गीचे से यक्षायतन की ओर आते देख कर एक दूसरे से इस प्रकार सलाह की—'देखो देवानुप्रियो! बंधुमती भार्या के साथ अर्जुन यहाँ शीघ्र ही आने वाला है। हमारे लिए यह उचित एवं श्रेयस्कर है कि अपन अर्जुन माली को उल्टी मुश्कियों से बाँध कर गिरादे तथा बंधुमती मालिन से विपुल भोगोपभोग

करते हुए रहे।' आपस मे यह वात सबने स्वीकार की तथा यक्षायतन के दोनो विशाल किवाड़ो के पीछे छहो पुरुष छुप कर खडे हो गये। शब्द करना तो दूर श्वासोश्वास की मंद ध्वनि तक नही करते हुए वे गुप्त रूप से छुपे रह कर अवसर की वाट देखने लगे।

**७ तएणं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणिजक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ, करित्ता महरिहं पुप्फुच्चणियं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिए पणामं करेइ। तएणं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता अज्जुणयं मालागारं गिण्हंति, गिण्हित्ता अवओडयबंधणं करेंति, करित्ता बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति।**

अर्थ—अर्जुन व वंधुमती यक्षायतन मे आए। प्रतिमा को देखते ही प्रणाम किया, महान् जनो के योग्य पुष्पो से पूजा-अर्चना की एवं घुटने झुका कर प्रणाम किया। इतने मे तो वे छहो गोट्ठिले पुरुष किवाडो के पीछे से जल्दी-जल्दी निकले तथा अर्जुन को उल्टी मुश्कियो से वाध कर एक ओर लुढका दिया तथा वंधुमती मालिन के साथ अनेक प्रकार की कुचेष्टाएँ करने लगे (अर्जुन को तो किसी के वहाँ होने का ज्ञात ही नही था, अतः वह अपने वचाव के लिए कुछ कर ही नही पाया।)

८ तएणं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अय-मज्झत्थिए० समुप्पण्णे—'एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लि जाव वित्तिं कप्पे-माणे विहरामि। तं जइ णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णि-हिए होंति से णं किं मम एयारूवं आवत्तिं पावेज्जमाणं पासंते ? त णत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णिहिए सुव्वत्तं तं एस कट्ठे।'

अर्थ—छहो पुरुषो द्वारा अपनी पत्नी की अपने सामने होती हुई दुर्गति को देख कर अर्जुन माली विचार करने लगा—

'मैंने मुद्गरपाणि यक्ष भगवान् की बचपन से ही एक निष्ट भक्ति की है। रोज सबसे पहले फूल चढ़ा कर प्रणाम करके फिर अन्य कार्य करता हूँ। परन्तु यदि यहा यक्ष का निवास होता तो क्या वे मुझे इस प्रकार विपत्ति मे पडा देख सकते थे ? लगता है, यहाँ कोई मुद्गरपाणि यक्ष नही है, केवल लकड़ी की बनी प्रतिमा की लकड़ी ही है।'

९ तएणं से मोग्गरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स माला-गारस्स अयमेयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता अज्जु-णयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्प-विसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गिण्हइ, गिण्हित्ता ते इत्थि सत्तमे छ पुरिसे घाएइ।

अर्थ—अर्जुन मालाकार के भाव मुद्गरपाणि यक्ष ने

शीघ्र ही जाने तथा जान कर अर्जुन माली के शरीर मे प्रवेश किया। प्रवेश करते ही दैविक शक्ति से तड़-तड कर के बंधन टूट गए। हजार पल के वजन वाले (यानी एक मन साढे बाईस सेर करीब) लोह मुद्गर को लेकर यक्षाविष्ट अर्जुन ने बंधुमती सहित छहो गोठीले पुरुषो को उसी समय मार डाला।

**१० तएणं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरंतेणं कल्लाकल्लि इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे विहरइ।**

अर्थ—मुद्गरपाणि यक्ष आवेष्टित अर्जुन माली नित्य राजगृह नगर के बाहर अपने यक्षायतन के समीप छह पुरुषो व एक स्त्री की हत्या करता हुआ घुमने लगा।

**११ तएणं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अण्णाइट्ठे समाणे रायगिहे बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे विहरइ।**

**तएणं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे जाव**

**घाएमाणे विहरइ । तं माणं तुब्भे केइ तणस्स वा कट्ठ-स्स वा पाणियस्स वा पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइं णिगच्छउ, मा णं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ" त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह, घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह। तएणं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति ।**

अर्थ—तब राजगृह के तिराहे-चोराहे आदि सार्वजनिक स्थलों पर लोग आपस में यह बात कहने लगे, विशेष रूप से चर्चा करने लगे, व्याख्या करने लगे, समझाने लगे कि हे देवानु-प्रियो ! राजगृह के बाहर यक्षावेष्टित अर्जुन माली नित्य छह पुरुषों व एक स्त्री की घात करता हुआ घूम रहा है ।

श्रेणिक राजा को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होने अपने सेवक पुरुषो को बुला कर कहा कि हे देवानुप्रियो ! जाओ और राजगृह मे इस प्रकार दो-तीन बार घोषणा कर के मेरी आज्ञा मुझे वापस लौटाओ कि 'हे देवानुप्रियो ! राजगृह के बाहर यक्षावेष्टित अर्जुन माली नित्य छह पुरुषों व एक स्त्री की घात करता हुआ विचरता है। यदि तुम्हें अपना जीवन प्रिय हो तो घास, लकड़ी, पानी, फल, आदि लेने के लिए अथवा अन्य किसी भी प्रयोजन से राजगृह के बाहर मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर का विनाश हो जाय ।'

राजाज्ञा पा कर सेवक पुरुषो ने राजगृह मे घूम-घूम कर यह घोषणा कर के राजा को सूचित कर दिया ।

**विवेचन**–सामाजिक जीवन मे अनुचित व्यवहार के लिए कतई अवकाश नही है। जब भी भावुकता मे आ कर श्रेणिक सरीखे विवेकी राजा भी ललिता-गोष्ठी को मनमाने व्यवहार की छट देते है, तो उसके परम्पर परिणाम कहाँ तक पहुँचते है, यह उपरोक्त कथानक मे आया है।

श्री दशाश्रुतस्कध दसवी दशा मे साध्वियो द्वारा पुरुषपना पाने के लिए निदान किए जाने का वर्णन मिलता है। वे निदान करती है–

"दुक्ख खलु इत्थित्तणए, दुस्सचराइ गामताराइं जाव सन्निवेस-तराइ, से जहा नामए–अंबपेसियाइ वा माउलुगपेसियाइ वा अबाडग-पेसियाइं वा मसपेसियाइ वा उच्छुखंडियाइ वा संबलिफलियाइ वा बहुजणस्स आसायणिज्जा पत्थणिज्जा पीहणिज्जा अभिलसणिज्जा एवामेव इत्थिया वि बहुजणस्स आसायणिज्जा जाव अभिलसणिज्जा, त दुक्ख खलु इत्थित्तणय साहु।"

अर्थ–स्त्रीपने मे तो दुःख ही है, वे कही भी अकेली दूसरे गाँव आदि नही जा पाती है। आम की फाक, तरबूजे की फाक, अबाडग की फाक, साठे की गडेरी और सिबलि की फली आदि स्वादिष्ट वस्तुये जैसे देखते ही बहुत-से लोगो द्वारा स्वाद लेने योग्य, चाहने योग्य, प्राप्त करने योग्य व अभिलाषा योग्य होती है, वैसे ही स्त्रियाँ भी बहुत लोगो द्वारा चाहने योग्य यावत् अभिलाषा योग्य होती है। अत स्त्रीपने मे दु ख है, सुख तो पुरुषपने मे है।

बधुमती यदि अर्जुन के साथ पुष्प संचयन के लिए नही जाती, तो गोठीले पुरुषो को वैसे चिन्तन का निमित्त नही मिलता। बधुमती को देख कर मित्र-मण्डली के सदस्यो की नीयत बुरी हो गई।

गोठीले पुरुष आढ्य यावत् अपराभूत थे। राजा श्रेणिक की उन पर मेहरबानी थी। उनके अन्त पुर मे सुदर पत्नियाँ नही होने का कोई कारण नही है। वे चाहते तो और भी विवाह कर सकते थे। उन्होने बधुमती पर नीयत बिगाड़ी वह भी एक धार्मिक स्थान पर तथा पति

के सामने, यह जघन्य काण्ड कितना वीभत्स हुआ ?

अपराधी अपने कृत्यो को अपराध नही मानता । वे छहो पुरु ऐसा करने को उचित एवं श्रेयस्कर मानते है, एक दूसरे की सलाह से षड्यंत्र रचते है ।

'परायी थाली मे घी ज्यादा दिखता है ।' परस्त्रीगमन के मूल मे यह लोकोक्ति रही हुई है । पर इसका परिणाम क्या हुआ ? मुद्गर के द्वारा किस निर्दयता से उन्हे मौत के घाट उतार दिया गया ? सभावित परिणामो से अपराध करने वाला अनजान नही होता है, उसकी अन्त रात्मा उसे वार-वार रोकती है—टोकती है, आवाज देती है, पर सुन अनसुना करके अपराधी अपराध करता रहता है ।

चूंकि अपराधी समाज मे रहता है, अत उसके वैयक्तिक व्यवहार से समाज भी अप्रभावित नही रह पाता । गोठीले पुरुष तो मारे ही गए, पर इस निमित से सैकडो निरपराध स्त्री-पुरुषो की हत्यायें हो गई ।

राजा श्रेणिक उस दैविक-शक्ति का कुछ भी प्रतिकार नही कर सके । घोपणा करवाने से ज्यादा वे कुछ करने की स्थिति मे थे भी नही।

दूसरे स्थानो से राजगृह आने वाले, राजगृह से भूले-भटके जाने वाले सात मनुष्य मुद्गरपाणि को मिल ही जाते थे ।

मान प्रशसा के भूखे मुद्गरपाणि यक्ष को अर्जुन ने आव्हान किया तो वह उन सात जीवो को मार कर ही तृप्त नही हुआ । मेरी धाक जम जानी चाहिए, आइंदा कोई मेरी प्रतिमा को केवल काष्ट समझ कर निर्भक्ति नही हो जाय, अत. मुझे अपना सिक्का जमाना है, ऐसे ही कुछ मनोभावो से यक्ष अर्जुन की देह मे जमा रहा एवं राजगृह को उद्वेलित करता रहा ।

'इस विशाल नर-वध के लिए कौन कितने पाप का भागी बना ?' यह प्रश्न बड़ा ही जटिल एवं सूक्ष्म है । मनमाने व्यवहार की छूट राजा ने भले ही दे दी थी, पर जनता ने गोठीले पुरुषो का निष

ाही किया, अत अमुक अशो मे राजगृह की जनता भी इस क्रिया मे भागी-
दार बनती है। अर्जुन एव यक्ष दोनो मे से अधिक पाप का बन्ध किसने
किया ? इसका निश्चय करने के वास्तविक साधन तो हमारे पास नही है।

अर्जुन ने देव को आव्हान करके बुलाया था, देव अर्जुन के शरीर
से सारे पाप कर रहा था, पर साथ ही बुलाने के बाद अर्जुन स्वतन्त्र
नही था। पूजा, भक्ति का भूखा देव व्यर्थ ही मनुष्यो को मार-मार कर
अपना आतक जमाने की चेष्टा कर रहा था।

कुछ भी हो, पर-स्त्री के रसिको की यह दुर्गति बडी दयनीय एवं
शिक्षाप्रद है। लोग रास्ते चलते पराई स्त्रियो की ताक-झाक करते है,
उसके रूप-सौन्दर्य को देख कर मन मे दुर्भाव भी लाते है, पर उनका यह
चिन्तन व्यर्थ है, क्योकि उन्हे वह प्राप्त नही होगी। अगले कुछ क्षणो मे
आँखो से ओझल हो जायेगी, जिसे शायद ही कभी वापिस देखने का काम
पडे। यह अनर्थदण्ट कितना भयकर है ? पूज्य श्री जयमल्जी म सा.
फरमा गए है—

'कुलवंती जाय चली, कोई करे ज साठी चाय रे।
विगर मिल्या बिन भोगव्या, मरने दुर्गति जाय रे।
जीवडला दुलहो मानव भव काई हारे॥'

ठोकर लगने वाले को दर्द होता है, समझदार अपने को उस ठोकर
के स्थान पर संभाल लेते है। पराई पूनियो से कातना सीखने को मिल
जाय तो भी गनीमत है।

**१२ तत्थणं रायगिहे णयरे सुदंसणे णामं सेट्ठी परिवसइ अड्ढे जाव अपरिभूए। तएणं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ।**

अर्थ—उस राजगृह नगर मे आढ्य यावत् अपराभूत
सुदर्शन सेठ रहा करते थे। वे श्रमणोपासक थे। जीव अजीव

के ज्ञाता यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

**विवेचन**—'अभिगय जीवाजीवे जाव विहरइ' मे सकुचित पूर्ण पाठ श्री भगवती सूत्र श २ उ ५ मे इस प्रकार है—"उवलद्धपुण्णपावा (पुण्य किसमे होता है और पाप किसमे होता है, इसका उन्हे ज्ञान था।) आसवसंवरणिज्जरकिरियाहिकरणबंधमोक्ख-कुसला (आस्रव—कर्मों के आने के कारण, संवर—आश्रवो का निरोध, निर्जरा—कर्म का देशतः क्षय, क्रिया—कार्य करने की पद्धति, अधिकरण—अशुभ मन वचन काया आदि, बंध—आत्मा के साथ कर्म संबंध होना, मोक्ष—कर्मों का सम्पूर्ण क्षय और विविध तत्त्वो के ज्ञाता थे) असहेज्जदेवासुरणागसुवण्ण जक्खरक्खस किंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा (देव, असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, महोरग आदि विविध देवो से वे सहायता नहीं चाहते थे अथवा ये सभी देव गण उन्हे निर्ग्रंथ-प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते थे। (णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया णिव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिजपेमाणुराग रत्ता) निर्ग्रंथ-प्रवचन मे उन्हे किंचित् मात्र भी कोई शंका नहीं थी, प्रतिपूर्ण—अनुत्तर धर्म पा कर अब वे किसी अन्य धर्म की आकाक्षा वाले नही थे। करणी के फल मे लेश मात्र भी संदेह नहीं था, धर्म को उन्होंने उपलब्ध कर अर्थ जाना था, धर्मतत्त्व का ग्रहण किया था, पृच्छा करके विनिश्चय करके धारणाओ को सशयरहित कर लिया था, उनकी अस्थि एवं अस्थि की मिजा तक धर्म का प्रशस्त प्रेम—अनुराग रजित था, उनकी नस-नस मे जैन धर्म रमा हुआ था।)

अयमाउसो ! णिग्गथे पावयणे अयं अट्ठे अय परमट्ठे सेसे अणट्ठे (आपस मे मिलने पर उनकी अभिवादन विधि निम्न शब्दो से होती थी—हे देवानुप्रियो ! यह निर्ग्रंथ-प्रवचन ही अर्थ है, यही परमार्थ है, शेष अनर्थ है) उसियफलिहा अवगुयदुवारा चियत्ततेउरघरप्पवेसा (इन

देने के लिए उनके दरवाजे हमेशा खुले रहते थे, किसी के अन्त.पुर मे जाने पर भी उनके प्रति अविश्वास नही था ऐसे दृढ धर्मी थे ।) बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववामेहिं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुन्न पोमहं सम्म अणुपालेमाणा समणे णिग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेण वत्थपडिग्गहकंवलपायपुछणेण पीढफलगसेज्जा-सथारएण ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहएहिं तवोकम्मेहि अप्पाण भावेमाणा विहरति । (वहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा आदि तिथियो को प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् पालन आदि धार्मिक अनुष्ठान करते थे । साधु-साध्वियो को अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कवल, रजोहरण, पीढ, फलक शय्या, सस्तारक, औषध, भेषज आदि का दान करते हुए अपनी शक्ति मुजव यथागृहीत तपकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ।

सुदर्शन श्रमणोपासक भी उपरोक्त गुणो वाले श्रावक-रत्न थे।)

**१३–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव विहरइ । तएणं रायगिहे णयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?**

अर्थ–उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का राजगृह के गुणशीलक बगीचे मे पधारना हुआ । लोग आपस मे कहने लगे–अरिहंत भगवंतों के नाम गोत्र श्रवण करने का भी महान् लाभ है, तो दर्शन करने, वाणी सुनने एवं प्रश्न पूछ कर विपुल अर्थ ग्रहण करने का तो कहना ही क्या है ?

**१४–तएणं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयं अज्झत्थिए जाव**

समुप्पण्णे–'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं जाव एवं वयासी–'एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ । तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि जाव पज्जुवासामि ।'

अर्थ—सुदर्शन श्रावक को भगवान् के पधारने का वृतात ज्ञात हुआ तो सेवा में जाने का विचार करके वे माता-पिता के पास आये तथा हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि–'मै श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में जा कर वंदना नमस्कार यावत् पर्युपासना करना चाहता हूँ ।'

१५—तएणं तं सुदंसणं सेट्ठि अम्मापियरो एवं वयासी—'एवं खलु पुत्ता ! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं भगवं [illegible] वंदए णिग्गच्छाहि । मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ । तुमं णं इह गए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि ।'

तएणं से सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी–'किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह पत्तं इह समोसढं इह गए चेव वंदिस्सामि

णमंसिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।'

तएणं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे णो संचायंति बहूहि आघवणाहि पण्णवणाहि सण्णवणाहि विण्णवणाहि जाव परूवेत्तए । तएणं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी—'अहासुहं देवाणुप्पिया !' तएणं से सुदंसणे सेट्ठि अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पायविहार-चारेणं रायगिहं णयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंते जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

अर्थ–सुदर्शन के माता-पिता ने कहा–'हे पुत्र ! रास्ते मे अर्जुन माली का उपद्रव है। अत तुम भगवान् महावीर स्वामी की पर्युपासना के लिए वहाँ मत जाओ, कही ऐसा न हो कि तुम्हारे शरीर को पीडा पहुँचे। भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं, अत वे यही से तुम्हारी वंदना स्वीकार कर लेगे। तुम यही से प्रभु की भक्ति करो।'

सुदर्शन बोले––'जब प्रभु यहाँ पधारे है तो मै यही से

कैसे वंदना नमस्कार करलूँ ? मैं तो आपकी आज्ञा होने पर सेवा में ही जाना चाहता हूँ ।'

जब माता-पिता नही समझा सके, तो विवश हो कर अनिच्छा से---नही चाहते हुए जाने की अनुज्ञा दे दी । माता-पिता की अनुमति पा कर सुदर्शन श्रावक ने स्नानादि किया, सभा के योग्य श्रेष्ठ वस्त्र धारण किए तथा राजगृह से रवाना हुए मुद्‌गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अधिक नजदीक न अधिक दूर से ही गुणशीलक बगीचे का मार्ग था, उस पर से होते हुए सुदर्शन निर्भय मन से जाने लगे ।

**१६ तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते तं पलसहस्सणिप्फणं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।**

**तएणं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयल एवं वयासी—'णमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं, णमोत्थुणं समणस्स जाव संपाविउकामस्स । पुव्विं च णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए**

जावज्जीवाए थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे, सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छा परिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं मुसावायं, सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्व परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए। अहणं एत्तो उवसग्गाओ ण मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्ति कट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।'

अर्थ—अपने से न अधिक दूर तथा न अधिक नजदीक से जब मुद्गरपाणि यक्ष ने सुदर्शन को निर्भय जाते हुए देखा तो एकदम कुपित होकर हजार पल वजन वाले उस मुद्गर को उठाया और उसे घुमाते सुदर्शन श्रमणोपासक की ओर लपका।

मुद्गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आते हुए देख कर सुदर्शन श्रावक भयभीत नही हुए, त्रास को प्राप्त नही हुए, उद्विग्न नहीं हुए, क्षुभित नही हुए, चलित नही हुए, संभ्रमित नही हुए, मन वचन काया से चंचल नही होते हुए वस्त्र के छोर से भूमि का प्रमार्जन किया एवं हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा—

"नमस्कार हो मोक्ष प्राप्त अरिहंत भगवंतो को, नम-

स्कार हो मेरे धर्म-गुरु धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को जो यावत् मोक्ष प्राप्त करने वाले है। मैंने पहले भी श्रमण भगवान् महावीर के पास यावज्जीवन स्थूल प्राणातिपात का त्याग किया था, स्थूल मृषावाद का त्याग किया था, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया था, स्व-पत्नी मे संतोष रखकर पर-स्त्री का त्याग किया था, परिग्रह की मर्यादा रूप इच्छापरिमाण किया था। अब मै उन्ही भगवान् की साक्षी से यावज्जीवन समस्त प्राणातिपात का त्याग करता हूँ, समस्त मृषावाद का त्याग करता हूँ समस्त अदत्तादान, समस्त मैथुन, समस्त परिग्रह, समस्त क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य परपरिवाद, रति-अरति, मायामृषावाद, मिथ्यादर्शनशल्य-इन अठारह पापो का त्याग करता हूँ। यावज्जीवन अशन, पान, खादिम स्वादिम रूप चारो आहार का त्याग करता हूँ। यदि मै इस उपसर्ग से बच जाऊँ, तो मुझे ये प्रत्याख्यान पारने कल्पते है, यदि मै इस उपसर्ग से नही बचूँ तो ये नियम मुझे पारने नही कल्पते है।" इस प्रकार सुदर्शन श्रमणोपासक ने सागार संथारा अंगीकार कर लिया तथा ध्यानस्थ हो गए।

**१७ तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे तं पलसहस्स णिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे-उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं**

तेयसा समभिपडित्तए।

तएणं से मोग्गरपाणी जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे-परिघोलेमाणे जाहे णो संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खि सपडिदिसि ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं णिरिक्खइ णिरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

तएणं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के धसत्ति धरणियलंसि सव्वंगेहि णिवडिए। तएणं से सुदंसणे समणोवासए णिरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ।

अर्थ—वह मुद्गरपाणि यक्ष मुद्गर को जोर-जोर से घुमाते हुए सुदर्शन श्रमणोपासक के पास आया, परन्तु सुदर्शन को अपने तेज से अभिभूत नही कर सका अर्थात् उसे किसी भी तरह कष्ट नही पहुँचा सका।

जब वह मुद्गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक की परिक्रमा करते हुए किसी तरफ से भी कष्ट नही पहुँचा सका तो एकटक दृष्टि से सुदर्शन को देखने लगा। जब काफी समय तक सुदर्शन श्रमणोपासक को देख चुका तो आखिर अर्जुन के

शरीर से पलायन कर गया तथा मुद्‌गर को हाथ में लेकर यक्षायतन की ओर चला गया।

अर्जुनमाली का शरीर यक्ष के निकलते ही एकदम सर्वांग से धस् शब्द के साथ गिर पड़ा। सुदर्शन श्रावक अपने को निरूपसर्ग जान कर सागारी संथारा पारने लगे।

**विवेचन**—लोकमत हमेशा विभाजित रहा है। सुदर्शन श्रावक को इस परिस्थिति में प्रभु दर्शन के लिए जाते देख कर दो मुँही दुनिया दो प्रकार से बोल रही थी। धर्मी लोग कह रहे थे—'धन्य है सुदर्शन श्रावक के धर्म-प्रेम को! इस जानलेवा उपसर्ग से भी इसे डर नहीं है। यह अवश्य ही हमारे लिए भी प्रभु दर्शन के मंगलमय द्वार खोलेगा।' धर्म-द्वेषी अपना राग अलग ही आलाप रहे थे—

'देखोजी! यह धर्म के धोरी अकेले ही हैं जो अभी मुद्‌गरपाणि के हाथ की चटनी बन जायेंगे। भगवान् की भक्ति तो जैसे ये ही करते हैं।'

अस्तु! सुदर्शन रास्ते-रास्ते निर्भय होकर चल रहे थे। भय से रास्ता छोड़ना या पलायन करना ठीक नहीं। वैसे ही 'काट कुत्ते! मैं दवा जानता हूँ।' या 'आ बैल! मुझे मार' वाली बात भी उनमें नहीं थी कि मुद्‌गरपाणि को अपनी ओर से चलाकर ललकारते कि मैं भगवान् महावीर का भक्त हूँ, तू मेरे सामने तो आ! मैं देखता हूँ तेरे मुद्‌गर में कितनी ताकत है?

सुदर्शन को देख कर मुद्‌गरपाणि यक्ष को क्रोध आया, वह इसलिए कि आगे तो जो भी उसके चंगुल में आये थे वे बेचारे रोते-कलपते, चीखते चिल्लाते, प्राणों की भीख मांगते थे और वह यक्ष उन्हें बेरहमी से परलोक पहुँचा देता था, पर आज यह कोई अलग ही फरिश्ता सामने आया है। न तो डर है, न मरने की छाया ही।

'मैं अभी देख लेता हूँ।' इस भावना से वह मुद्गर उठाता है पर उठे हुए हाथ नीचे नही आ पाते। इधर से जोर नही चलता तो पीछे से जमाऊँ ? पर यह क्या ? मुद्गर का वार ही नही हो पाता। सुदर्शन के शात सौम्य मुख पर मुद्गरपाणि की दृष्टि केन्द्रित हो गई। उसने जीवन मे पहली वार ऐसा निर्भय व्यक्ति देखा था, जो मौत से भी नही डरता। अप्रमत्त सुदर्शन मे ऐसी दिव्य शक्ति का आविर्भाव हो गया था कि यक्ष का वल नाकाम हो गया था।

गजसुकुमार जगजगते खीरे सिर पर डाले जाते हुए देख कर भी भयभीत नही बने, सुदर्शन ने मुद्गरपाणि यक्ष का भय नही माना। जैनो मे ऐसे-ऐसे जुझारो का जमघट रहा है। अत जैन इतिहास से अनभिज्ञ ही जैनधर्म को कायरो का धर्म कह सकता है।

सुदर्शनजी ने अपनी शक्ति तोल कर ही माता-पिता से आज्ञा मागी थी। वे जानते थे कि मुद्गरपाणि यक्ष का उपसर्ग अवश्यभावी है। उपसर्ग आते देख कर उन्होने व्रत प्रतिलेखन किया। उन्होने आर्त होकर चीख पुकार नही मचाई कि—

'हे भगवान्! मैं आपके दर्शन को आ रहा था कि वीच मे क्या मुसीवत आ गई ? आपकी सेवा मे तो अनेक देव आते रहते हैं, किसी न किसी को जल्दी भेजिए। मैं मारा जाऊँगा, तो आपकी भी वदनामी होगी। हाय! माता-पिता ने पहले ही मना किया था, मैंने उनकी वात नहीं मानी। अव तो मारे गए, कैसे वचेंगे ?'

सुदर्शन श्रमणोपासक की निर्भयता जैन इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ट है।

**१८ तएणं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के ? कहिं वा**

संपत्थिया ?" तएणं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! अहं सुदंसणे णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदिउं संपत्थिए।"

तएणं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी—"तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए।" 'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

तएणं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तएणं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य धम्मकहा। सुदंसणे पडिगए।

तएणं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ एवं वयासी—सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि। अहासुहं देवाणुप्पिया! तएणं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अवक्कमइ, अवक्क-

**मित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ।**

अर्थ–यक्षावेश निकलने पर निढाल पड़े अर्जुन थोडी देर वाद आश्वस्त हुए। सुदर्शन को वहाँ देख कर पूछा–'हे देवानु-प्रिय! तुम कौन हो, कहाँ जा रहे हो?' सुदर्शन वोले–'मै सुद-र्शन नामक श्रमणोपासक जीवाजीव का ज्ञाता हूँ। गुणशीलक उद्यान मे मेरे धर्माचार्य तीर्थकर देव श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराज रहे है। मै उनकी सेवा मे जा रहा हूँ।'

अर्जुन ने कहा—मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ। सुदर्शन ने कहा–मुझे कोई एतराज नही है आपको जैसा सुख हो, करिए।

सुदर्शन व अर्जुन दोनो भगवान् के पास उपस्थित हुए एवं वंदना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुन माली एवं उस विशाल परिषदा को धर्मकथा कही। सुदर्शन अपने स्वस्थान को लौटे।

भगवान् के पास धर्म सुन कर अर्जुन ने कहा–मैं निर्गंथ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् आपकी आज्ञा होने पर संयम स्वीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने आज्ञा दे दी, तव वे ईशानकोण मे गए। केशो का लुचन किया, वेश परिवर्तन किया एवं प्रभु ने उन्हे सामायिक चारित्र देकर अर्जुन अणगार के रूप मे स्थापित किया। अव अर्जुन अनगार ईर्यासमिति, भाषासमिति आदि से युक्त यावत् गुप्तिगुप्त ब्रह्मचर्य के धारक हो गये।

१८ **विवेचन**—अर्जुन को यक्ष-निष्कासन से वहुत पीडा का अनुभव हुआ। इतने दिन तो शरीर देव-प्रभाव के कारण चल रहा था, पर भोजन किए महीनो हो गये थे, अत कमजोरी भी विशेष अनुभव होने लगी। अर्जुन ने सुदर्शन से जो संवाद किया, उससे सुदर्शनजी का निरभिमानता का गुण उजागर होता है। दूसरा कोई होता तो कह वैठता-'नालायक कहीं का ! मुझे मारने आया और अव मेरा परिचय पूछता है? सैंकडो पुरुषो और स्त्रियो को मौत के घाट उतारते तुझे शर्म नही आई? तू भगवान् के दरवार मे मुह दिखाने लायक नही है। तुझे साथ ले जाना मुझे विल्कुल पसंद नही है।'

सुदर्शन का राजगृह से निष्क्रमण लोग अपनी छतो पर चढे हुए देख रहे थे। जव जनता ने (अदृश्य देव के हाथो) मुद्गर को यक्षायतन की ओर जाते देखा, तो राजगृह मे हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। फिर तो लोगो के समूह के समूह भगवद्-पर्युपासना के लिए पहुँच गए।

धर्म द्वार मे आकर पापी के पापों का प्रक्षालन हो जाता है। वीतराग के दरवार मे धर्म-देशना की वर्षा सव पर समान होती है।

अर्जुन अधर्मी से धर्मी वन गया था। सुदर्शन से प्रभावित अर्जुन पर प्रभु की देशना का अमोघ प्रभाव हुआ। वह वही दीक्षित हो गया। पाप-पंक मे फँसा हुआ अर्जुन परमेष्ठी का अंग वन गया।

सुदर्शन भगवान् के दर्शन करने रवाना हुए तव स्नानादि कर वस्त्र-विभूषा आदि की। यह उनका लौकिक आचार था। धर्म के साथ स्नान का कोई संवंध नही है। अर्जुन द्वारा सैंकड़ो जीवो की हत्या हुई थी तथा वे सीधे प्रभु की सेवा मे आये थे। दीक्षा के पूर्व उन्होने स्नान भी नही किया था।

मस्तक की चारो दिशा मे तथा ऊपर की तरफ से वालो का लुंचन 'पंचमुष्टी लोच' कहा जाता है। 'केवल पाँच वार मे ही सिर के सारे वालो का लोच हो जाना—' यह कोई प्रामाणिक अर्थ नही है। श्री सूयगडाग सूत्र अ. ७ गाथा १० मे जन्म के केश नही काटे हुए वालक के लिए

'पंचसिहा कुमारा-पाँच शिखाओ वाला कुमार' शब्दो का व्यवहार हुआ है।

१९ तएणं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूव अभिग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ।

तएणं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढम पोरिसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ। तएणं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे णयरे उच्चणीय जाव अडमाणं बहवे इत्थिओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी—"इमेणं मे पिया मारिए, इमेणं मे माया मारिया, भाया मारिए, भगिणी मारिया, भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए, धूया मारिया, सुण्हा मारिया, इमेणं मे अण्णयरे सयणसंबंधिपरियणे मारिए" त्ति कट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति, णिंदंति, खिसंति, गरिहंति, तज्जेंति, तालेंति।

तएणं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहि य महल्लेहि य जुवाणएहि य

आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे, खममाणे, तितिक्ख-माणे, अहियासमाणे रायगिहे णयरे उच्चणीय-मज्झिम कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं ण लभइ, जइ पाणं लभइ तो भत्तं ण लभइ।

अर्थ–दीक्षित होने के दिन ही अर्जुन अणगार ने भगवान् को वंदना नमस्कार कर यह अभिग्रह धारण किया कि मुझे आजीवन निरन्तर वेले-वेले की तपस्या करनी उचित है। इस प्रकार अभिग्रह धारण करने के बाद पहले वेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय तथा दूसरे प्रहर मे ध्यान करके गोचरी का समय होने पर प्रभु से आज्ञा लेकर गौतमस्वामी की भाति अर्जुन अनगार गोचरी के लिए निकले।

धनवान, मध्यमवर्गीय, गरीव आदि घरो मे भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए अर्जुन अनगार को देख कर वहुतसे स्त्री, पुरुप, वालक, वडे, युवक आदि कहने लगे–'इसने मेरे पिता को मारा, इसने मेरी माता को मारी, वहिन को मारा, भाई को मारा, पत्नी को मारी, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू को मारा, अन्य स्वजन संबंधियो को मारा।' इस प्रकार कहते हुए उन स्त्री पुरुषो द्वारा अर्जुन अनगार का कटु वचनों से तिरस्कार होने लगा, हीलना, निंदा, खिसना, गर्हा, ताड़ना, तर्जना आदि होने लगी। थप्पड़, लाठी, ईंट आदि से मारा जाने लगा।

तब वे अर्जुन अनगार बहुत-से स्त्री-पुरुषो द्वारा अवमानित ताडित तर्जित किए जाते हुए भी शान्त रहे। उन्होने मन से भी उन पर द्वेष नही किया। उनके कटु वचनो व प्रहारो को उन्होने सम्यक् रीति से सहन किया, उदारतापूर्वक सहज भाव से क्षमा किया, प्रतिकार का विचार तक नही किया, प्रतिशोध नही लिया। सम्यक् रूप से सहन करते हुए, क्षमा करते हुए, तितिक्षा करते हुए, पनाते हुए राजगृह के उच्च नीच मध्यम कुलो मे जहाँ कही आहार मिलता तो पानी नही मिलता। पानी मिलता तो आहार नही मिलता।

**२० तएणं से अज्जुणए अणगारे अदीणे अविमणे अकलुसे अणाइले, अविसाई अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ णयरीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ पडिदसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ।**

अर्थ–भिक्षाचर्या के परीषह उपसर्गो से मन को ऊँचा-नीचा नही करते हुए, दैन्यभाव नही लाते हुए, मन को मैला नही करते हुए, अशुभ योगो का सर्वथा परिहार करते हुए, किसी प्रकार का विषाद–खेद नही करते हुए, मन वचन काया मे तनतनाट नही करते हुए निर्मल भावो से अर्जुन अणगार ने भिक्षाचर्या तप की आराधना की। जो कुछ मिला उसे ले कर गुण-

गीलक उद्यान में पधारे, गौतमस्वामी की भांति प्रभु को आ
पानी दिखलाया तथा आज्ञा पाकर मूर्च्छाभाव से रहित स
बिल प्रवेश के समान आहार पानी को पेट के कोठे में डाल दिय

२० **विवेचन**—अर्जुन माली द्वारा (ग्रंथकारो के मतानुसार
महीने लगभग) प्रतिदिन सात प्राणियो का अनवरत सहार हुआ
साधारण समझ वाली जनता इस दु ख को इतनी जल्दी कैसे भूल जा
'अब ये हत्यारे नही रहे है, अब तो ये प्राणी मात्र के परम रक्षक है
जिन छह काय के घातक है, ये उनमे से एक भी जीव की घात
करते।' यह बात कौन समझाता तथा समझाने पर भी कौन समझ

फलत. वही हुआ जो होना था। अर्जुन अणगार को कही ग
सुननी पडती कही कोई-कोई पीट भी देता। केवल भूख और प्य
ही परीषह दुर्जय नही है। कईयो के लिए भूख-प्यास सहना सहज
अपमान जनक वचनो को वे सह नही पाते। अर्जुन अणगार के
आक्रोश व वध परिषह का प्रकृष्ट रूप विद्यमान था।

उन्होने जन आक्रोश को सीधे सहज रूप मे स्वीकार किया-
बेचारे केवल मुँह से कह रहे है, लाठी पत्थर या ईट से ही मार
पर मैंने तो इनके प्रिय आत्मीयजनो को मृत्यु-मुख मे डाल दिय
इनका दोष ही क्या है ? मुझे अपने पूर्वकृत कर्मो की निर्जरा क
होगी। यदि मैं मन से भी ऊँचे-नीचे परिणाम लाऊँगा तो मेरा
सार्थक कैसे होगा ? मेरे धर्माचार्यजी ने महती अनुकम्पा कर
विध सघ मे सम्मिलित किया। हत्यारे को वदनीय-पूजनीय
अब यदि मै इस परीषह को नही जीत पाउँगा तो प्रभु मुझे स
गिनेगे।' ज्ञानी फरमाते है—'यदि कोई मुनि को कठोर वचन कहे
सोचे कि इसने पीटा तो नही है, पीटे तो सोचे—मेरे प्राण तो न
है, कोई प्राण भी ले ले तो यह सोचे कि मेरा धर्म-धन तो न
समकित रत्न तो नही खसोटा। यह मेरा उपकारी ही है—

"कटु बोला पीटा नही, लिए न मेरे प्राण।
धर्म-धन लूटा नही, यह है बधु महान् ॥"

क्षमाश्रमण अर्जुन अणगार ने तन्मयता से भिक्षाचर्या की। लोगो के आक्रोश से घवरा कर एक दो घर जाकर ही लौट आते, तो यह परीषह-जयी नही कहलाते। लोगो द्वारा कुछ भी कहा जाय या मारा-पीटा जाय, मेरी आत्मा मेरे पास है, उनकी सुरक्षा व्यवस्था मुझे करनी है। वहुधा व्यक्ति दूसरो के व्यवहार से शीघ्र प्रभावित हो जाता है। प्रेम करने वाले से प्रेम, द्वेषी के साथ द्वेष, प्रशसक पर अनुराग, निदक पर अशुभ-भाव, एव क्रोधी पर क्रोध, यह जन-जीवन की सामान्य पद्धति है, इसी कारण असमाधि एवं अशाति के अंधड़ उठते रहते है। यदि कोई दूसरो के व्यवहार मे सर्वथा अप्रभावित रह सके तो वह निश्चय ही अर्जुन अणगार की भाति अपनी आत्म-शाति कायम रख सकता है। दूसरे के पाव मे चुभा हुआ काटा हमे पीडा नही पहुँचा सकता है। अर्जुन अणगार ने दो दिन की प्रव्रज्या-पर्याय मे ही काया-कल्प कर दिया। उनकी ईर्यासमिति एवं आचार-विधि की तुलना आगमकार गौतमस्वामी के साथ करते है। उनकी आहार मे अमूर्च्छा की उपमा सर्प के विल प्रवेश से दी जाती है। सर्प विल मे घुसते हुए बहुत सावधान व सीधा रहता है। काटो की वाड मे उनकी कोमल काया किस कौशल से निकलती हे, यह प्रशसा का विषय है।

**२१ तएणं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिं जणवयविहारं विहरइ। तएणं से अज्जुणए अण-गारे तेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणु-भागेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे**

**छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव सिद्धे।**

अर्थ---किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृह से वाहर जनपद में विहार किया। अर्जुन अणगार पूर्वोक्त प्रकार के उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याण रूप, शिव रूप, धन्य रूप, मंगल रूप, शोभायुक्त, उत्तम उदग्र-उत्तरोत्तर वृद्धि युक्त, उदात्त–उज्जवल, सुन्दर, उदार और महान् प्रभाव वाले तप से आत्मा को भावित करते हुए छः महीने की श्रामण्य-पर्याय का पालन कर के अर्द्धमास की संलेखना कर के तीस भक्त अनशन का छेदन कर जिस अर्थ के लिए संयमी जीवन स्वीकार किया था, उस अर्थ की सिद्धि कर ली यानी मुक्त हो गये।

**२१ विवेचन**–घास के ठट्ट लगे हुए हो और एक चिनगारी लग जाए तो सारा घास भस्मीभूत हो जाता है, वैसे ही करोडो भवो के कर्म तपस्या के द्वारा नष्ट हो जाते है। अर्जुन अणगार ने सिर्फ छह महीने तक दीक्षा पाल कर ही अपना प्रयोजन सिद्ध किया।

अस्तु, अर्जुन अणगार ने अपनी आत्मा को अनंत अव्यावाध सुख प्रदान किया। पापी-महापापी भी धर्म की चरण-शरण मे पाकर किस प्रकार शरण्य वन सकता है, गटर का पानी गंगाजल वनकर लोक-पूज्य वन जाता है, यह वात सिद्ध करने के लिए यह अध्ययन पर्याप्त है।

**॥ छट्ठे वर्ग का तीसरा अध्ययन समाप्त ॥**

## छठा वर्ग: अध्ययन ४ से १४

अध्ययन ४—उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, गुणसिलए चेइए। तत्थ णं सेणिए राया, कासवे णामं गाहावई परिवसइ, जहा मकाई, सोलस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

अध्ययन ५—एवं खेमए वि गाहावई, णवरं कागंदी णयरी, सोलस वासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे।

अध्ययन ६—एवं धितिधरे वि गाहावई, कागंदी णयरी, सोलस वासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे।

अध्ययन ७—एवं केलासे वि गाहावई णवरं सागेए णयरे बारस वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

अध्ययन ८—एवं हरिचंदणे वि गाहावई सागेए णयरे बारस वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

अध्ययन ९—एवं वारत्तए वि गाहावई, णवरं रायगिहे णयरे बारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

अध्ययन १०—एवं सुदंसणे वि गाहावई णवरं वाणियगामे णयरे दुइपलासए चेइए, पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

अध्ययन ११—एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणिय-गामे णयरे पंच वासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

अध्ययन १२—एवं सुमणभद्दे वि गाहावई, सावत्थी णयरी बहुवासा परियाओ, विपुले सिद्धे।

अध्ययन १३—एवं सुपइट्ठे वि गाहावई सावत्थी णयरीसत्ता वीसं वासा परियाओ विपुले सिद्धे।

अध्ययन—१४—एवं मेहे वि गाहावई रायगिहे णयरे बहूहिं वासाइं परियाओ विपुले सिद्धे।

अर्थ—चौथे अध्ययन का प्रारम्भ—श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया-हे जंबू ! राजगृह नगर मे गुणशीलक उद्यान था। श्रेणिक नामक राजा का राज्य था। उस राजगृह में काश्यप नामक गाथापति का वर्णन मकाई के समान जानना। दीक्षित होकर सोलह वर्ष की दीक्षा-पर्याय का पालन कर विपुल पर्वत पर सिद्ध-वुद्ध और मुक्त हो गए।

पंचम अध्ययन—इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन है। वे काकंदी नगरी के निवासी थे। सोलह वर्ष तक प्रव्रज्या का पालन कर विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए।

षष्ठम अध्ययन—काकंदी के निवासी धृतिधर गाथापति भी सोलह वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर विपुल पर्वत से मुक्त हुए।

सप्तम अध्ययन—साकेत नगर के कैलाश गाथापति बारह वर्ष तक मुनि धर्म का पालन कर विपुल पर्वत से सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

अप्टम अध्ययन––साकेत नगर के हरिचन्दन गाथापति भी वारह वर्ष की साधु-पर्याय पालकर परिनिर्वृत्त हुए ।

नवम अध्ययन––राजगृह के वारत्त गाथापति वारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय पाल कर विपुल पर्वत पर मुक्त हुए ।

दशम अध्ययन––वाणिज्यग्राम के सुदर्शन गाथापति पाच वर्षो की श्रमण-पर्याय का स्पर्श कर विपुल पर्वत पर सिद्ध-वुद्ध-मुक्त हुए ।

एकादशम अध्ययन–वाणिज्यग्राम के पूर्णभद्र गाथापति भी पाच वर्षो तक प्रव्रज्या की परिपालना कर के जन्म जरा एवं मरण रहित अवस्था को प्राप्त हुए ।

द्वादशम अध्ययन–श्रावस्ती नगरी के सुमनभद्र गाथापति वहुत वर्षो तक महाव्रतो की आराधना कर अष्ट कर्म क्षय कर सिद्धि स्थान को प्राप्त हुए ।

त्रयोदशम अध्ययन–श्रावस्ती नगरी के ही सुप्रतिष्ठ गाथापति सत्तावीस वर्ष तक शुद्ध संयम की अनुपालना कर लोकाग्र पर सुप्रतिष्ठित हुए ।

चतुर्दशम अध्ययन–राजगृह के मेघ गाथापति वहुत वर्षो तक संयम पाल कर सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए ।

**विवेचन**–शका–अनेक मुनि शत्रुञ्जय, विपुलगिरि, गिरनार, अप्ट पद आदि पर्वतो से मुक्त हुए हैं । फिर उन स्थानो को पवित्र तीर्थ-स्थान मानने मे क्या बाधा है ?

समाधान–इस छट्ठे वर्ग के चौथे से चौदहवे तक के ग्यारह अध्ययनो के चरित्र नायक विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए, यह तो प्राकृत पाठ

से स्पष्ट ही है। इस पर भी यदि किसी स्थान विशेष की महत्ता वहा से मुक्त होने वाले महापुरुषो की अपेक्षा से हो तब तो पूरा का पूरा 'समय क्षेत्र' पवित्र तीर्थस्थान है, क्योकि यहा का कोई स्थान ऐसा नही है जहा से कोई मुक्त न हुए हो।

शका—फिर शत्रुञ्जय विपुलगिरि आदि पर्वतो पर जाने की क्या आवश्यकता थी ?

समाधान—संथारा करने वाले निर्जन शात स्थानो की गवेषणा करते है। तीर्थंकर देवो के सान्निध्य मे नर-अमर की विपुल आगति हुआ करती है। कोलाहल पूर्ण स्थान की अपेक्षा पर्वत पर आत्मशान्ति के निमित्त विशेष रहते है। जीवन-संध्या मे सारे जीवन की प्रतिलेखना एवं आराधना आवश्यक होती है। बस यही कारण है कि वनपर्वत आदि सुविधाजनक स्थान देख लिये जाते थे। साध्वियाँ तो अपने उपाश्रयो से ही काल-धर्म प्राप्त करती। यदि स्थान का एकात महत्त्व व आग्रह होता तो तत्संबधी विधि-विधान होता पर आगमो मे ऐसा कुछ भी सकेत तक नही है। विशेष बहुश्रुत फरमावे, वही प्रमाण है।

॥ छठे वर्ग के चौदह अध्ययन समाप्त ॥

## छठे वर्ग का पन्द्रहवां अध्ययन

१ उक्खेवओ पण्णरसमस्स अज्झयणस्स—एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे णयरे, सिरीवणे उज्जाणे तत्थ णं पोलासपुरे णयरे विजए णामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी णामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते णामं कुमारे होत्था, सुकुमाले।

**तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेणं कालेणं, तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे णयरे उच्चणीय जाव अडइ।**

अर्थ--श्री जंबूस्वामी ने वंदना नमस्कार कर पृच्छा की--हे भगवान्! छट्ठे वर्ग के पन्द्रहवे अध्ययन मे प्रभु ने क्या भाव फरमाये है? श्री सुधर्मा स्वामी ने फरमाया-हे आयुष्मान्! उस समय पोलासपुर नामक नगर था (ईशान कोण मे) श्रीवन नामक उद्यान था। विजय नामक राजा का शासन था। विजय नृप के श्री नामक रानी थी। विजय का पुत्र श्रीदेवी का उदर-जात अतिमुक्तक नामक सुरूप एवं सुकुमाल पुत्र था।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पोलासपुर के श्रीवन उद्यान में समवसृत हुए। भगवान् के ज्येष्ठ अंतेवासी इंद्रभूति गौतमस्वामी गणधर भगवान् थे। उनका विशेप वर्णन श्री भगवती सूत्र (की उत्थानिका) से जानना चाहिए। प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय एवं दूसरे प्रहर मे ध्यान करके पात्रादि का प्रतिलेखन कर गोचरी के लिए भगवान् से आज्ञा लेकर गौतम-स्वामीजी पोलासपुर के (धन की अपेक्षा) उच्च मध्यम व निम्न घरो मे सामुदानिकी भिक्षावृत्ति के लिए भ्रमण करने लगे।

१ **विवेचन**--गौतम स्वामी के सैंकडो अंतेवासी शिष्य थे। वे प्रकृति के भद्र, विनीत एवं गुरु चरणो मे निश्चल अर्पणा वाले थे। फिर

श्री गौतमस्वामी गोचरी के लिए क्यो पधारते थे ? क्या शिष्य आहार लाकर देने मे तत्पर नही थे ? अपना कार्य आप करने की वृत्ति वाले गौतमस्वामी स्वय गोचरी पधारने मे किसी प्रकार की हेठी नही समझते थे । श्री ज्ञाता सूत्र के सोलहवे अध्ययन से यह जानने को मिलता है कि मासखमण का पारणा होने पर भी धर्मरुचि अणगार स्वयं पारणा लेने गए । इतना ही नही, कडुआ तुम्बा परठने के लिए भी स्वयं पधारे । उस जमाने मे मुनियो की यह दशा थी और आज स्थिति यह है कि अधिकाश मे पराधीनता एव वडप्पन की आधी मे धूल-धूसर की गर्दिश इस कदर छा गई है कि आचार्यों के व्याख्यान स्थल पर पधारने के समय उनका आसन अन्य ढोते है, पाद-प्रोछन अन्य करते है, पाट पर वाजोट अन्य लगाते है, विहार मे पात्र एवं उपकरण अन्य ढोते है। शिष्य तो विनय भाव से सव कुछ करेंगे ही, पर करवाने वालो का गौतमस्वामी एव धर्मरुचि महाराज की ओर झाकना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

**२ इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव विभूसिए बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य डिंभएहिं य डिंभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धि संपुरिवुडे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए । तेहिं बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य डिंभएहिं य डिंभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धि संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ ।**

अर्थ---श्रीदेवी माता ने बालक अतिमुक्तक कुमार को स्नानादि करवा कर विभूषित किया एवं बालको के क्रीडागण मे खेलने भेजा । वहाँ अनेक छोटे-मोटे शिशुओ एवं बालक

बालिकाओं के साथ अतिमुक्तक भी बाल सुलभ खेल खेलने लगे।

**३ तएणं भगवं गोयमे पोलासपुरे णयरे उच्चणीय जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ। तएणं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए। भगवं गोयमं एवं वयासी—'के णं भंते! तुब्भे, किं वा अडह?'**

अर्थ-गौतमस्वामी पोलासपुर मे भिक्षा के लिए घूमते हुए उस बालको के क्रीड़ास्थल के पास से हो कर पधारे। खेलते हुए अतिमुक्त का ध्यान गौतमस्वामी की ओर आकृष्ट हुआ। वे गौतमस्वामी के पास गए तथा उनसे पूछने लगे-'हे भगवन्! आप कौन है और क्यो घूम रहे है?'

३ **विवेचन**—टीकाकार श्री अभयदेवजी सूरि आदि पूर्वज महापुरुषो के मतानुसार बालक अतिमुक्तक की उम्र उस समय छह वर्ष लगभग थी। तथा यही समय बालको के साथ खेलने कूदने के उपर्युक्त वर्णन को पुष्ट करता है। अतिमुक्तक का ध्यान गौतमस्वामी की ओर आकृष्ट हुआ, यह एक उल्लेखनीय तथ्य है। बहुधा देखा जाता है कि बालक खेल मे मस्त होकर भोजन करने के बुलावे की भी उपेक्षा कर बैठते है। खेल के सिवाय उन्हे कुछ भी नही सुहाता, फिर किस अदृश्य प्रेरणा से वे लोह-कण के समान गौतम स्वामी रूप चुम्बक के पास खिचे आये। छोटे से बालक को क्या पता कि ये कौन है तथा कहाँ जा रहे है, पर बालक पूछ ही बैठा। रवीन्द्र बाबू का कथन है—'दिया शाम को जलाया जाता है, पर तेल पहले ही डाल दिया जाता है।'

४ तएणं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणा णिग्गंथा इरियासमिया जाव बंभयारी, उच्चणीय जाव अडामो।

तएणं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी—"एह णं भंते! तुब्भे जण्णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि" त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलिए गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए।

अर्थ—गौतमस्वामी ने उत्तर दिया—'हम श्रमण-निग्रंथ है, जैन साधु है, भोजन-पानी के लिए घूम रहे है।'

तब अतिमुक्तक ने गौतमस्वामी से कहा—'हे भगवन्! यदि ऐसी वात है तो आप मेरे साथ चलिए, मै आपको भिक्षा दिलवाता हूँ।' यह कह कर अतिमुक्तक ने गौतमस्वामी की अंगुली पकड ली तथा अपने राजभवन में ले आया।

४ **विवेचन**—गौतमस्वामी ने वाल-सुलभ जिज्ञासा की उपेक्षा नहीं की, वालक को प्रश्न का उत्तर दिया। वडे वे ही होते हैं जो छोटो का अनादर नही करते। महानता का अंकन छोटो के प्रति किये जाने वाले वहार से होता है। यदि वालक विवेकशील नही होता, तो गौतमस्वामी की वात सुनकर खेल मे मग्न हो जाता, पर अतिमुक्तक अपने भोजन-गृह मे साथ ले जाते है। 'ये वडे हैं, कहीं आगे नही निकल जाये, मैं पीछे नही रह जाउँ'—इस भावना से वालक ने अंगुली पकड़ ली तथा साथ मे ले गये।

५ तए णं सा सिरीदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ,

**अब्भुट्ठित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ-णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ।**

अर्थ—धर्मप्रेमी श्राविका श्रीदेवी रानी ने गौतमस्वामी को पधारते देख अत्यंत हर्ष का अनुभव किया। तथारूप के श्रमण भगवान् को मैं दान दूंगी, इस कल्पना से ही वह पुलकित हो उठी। उसी क्षण आसन से उठ कर गौतमस्वामी की अगवानी की। मस्तक पर तीन बार आवर्तन कर वंदन-नमस्कार किया। अपने भोजन गृह में ले गई अथा विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम वहराया एवं गौतमस्वामी अपने स्थान को पधारने को उद्यत हुए।

५ **विवेचन**—कोमल मन के वालक सिखाने से कम सिखते है, देख-देख कर सहज रूप से उनकी शिक्षा वरावर चलती रहती है। वे अपने आस-पास जो कुछ भी भला-वुरा देखते है, आत्मसात् करते जाते है। अतिमुक्तक कुमार का गौतमस्वामी की ओर खिचाव एकदम आकस्मिक नही कहा जा सकता। माता श्रीदेवी की धर्म-प्रीति के वीज अतिमुक्तक की मनोभूमि पर वरावर पडते जाते थे। आज वालको मे धार्मिक सस्कार नही होने की शिकायत की जाती है, शिकायत तो यह होनी चाहिए कि माता-पिताओ मे, वडे-वुजुर्गो मे धार्मिक संस्कार नही है। वालक अतिमुक्तक समझते थे कि मुझे माताजी को भिक्षा देने के लिए कहना पडेगा कि मै इन्हे साथ लाया हूँ, पर जव माता द्वारा वदन-विधि देखी, तो विचक्षण प्रज्ञा वाले वालक को समझते देर नही लगी कि अवश्य ही ये महापुरुष मेरे पिताजी से भी अधिक पूज्य है। माता ने पिताजी को कभी इस

प्रकार प्रणाम नही किया । पिताजी को भोजन कराने मे माताजी को इतनी प्रसन्नता नही देखी गई। अतः गोतमस्वामी के प्रति वालक अतिमुक्तक की श्रद्धा वढती ही रही ।

६ तएणं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी- "कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?" तएणं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमार एवं वयासी---एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे, इहेव पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिग्गहं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तत्थ णं अम्हे परिवसामो ।

तएणं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी- 'गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए ?' 'अहासुहं देवाणुप्पिया !'

तएणं से अइमुत्ते कुमारे गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ ।

तएणं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

**तएणं से समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स तीसे य धम्मकहा। तएणं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-तुट्ठ 'जं णवरं देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि। तएणं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि।' 'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'**

अर्थ-अतिमुक्तक ने गौतमस्वामी से पूछा-हे भगवन्! आपका निवास कहाँ है? तव गौतमस्वामी ने फरमाया-मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य धर्मोपदेशक धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक भगवान् महावीर स्वामी इस पोलास-पुर के वाहर श्रीवन उद्यान मे विराज रहे है। मै वही उनकी सेवा मे रहता हूँ।

अतिमुक्तक वोले--हे भगवन्! क्या मैं आपके साथ भगवान् के दर्शन करने चल सकता हूँ। गौतमस्वामी ने फर-माया-जैसे सुख हो।

वालक अतिमुक्तक गौतमस्वामी के साथ भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ, वदना नमस्कार की तथा सेवा मे वैठ गया।

गौतमस्वामी ने आहार-पानी दिखलाया तथा भोजन करने अन्यत्र पधार गए।

भगवान् महावीर स्वामी ने अतिमुक्तक कुमार को धर्मकथा फरमाई। सुन कर वालक ने कहा-माता-पिता से पूछ कर मैं श्रीचरणो में दीक्षा लूगा। भगवान् ने फरमाया-

जेसा सुख हो। धर्मकार्य में प्रतिवन्ध नहीं करना चाहिए।

६ **विवेचन**—गौतमस्वामी ने आहार तो ले लिया पर भोजन करने नही बैठे, तो वालक को जिज्ञासा हुई—ये भोजन यहीं क्यो नही कर रहे है ? अन्यत्र कहाँ जा रहे है ? पूछा तो ज्ञात हुआ कि इनके गुरु महावीर स्वामी हैं। 'शिष्य ऐसे है तो गुरु कैसे होगे ? क्यो न उनके दर्शन किए जाये।' इस भावना से वालक की इच्छा हुई। पर विना पूछे जाना ठीक नही। वालक ने विनयपूर्वक साथ चलने की इच्छा व्यक्त की तो गौतम स्वामी ने निषेध नही किया।

जिस समय क्रीडा स्थल से गौतमस्वामी के पास आये थे तब तो वंदन-विधि का ज्ञान नही होने से गौतमस्वामी को वंदना नही की थी, पर अव माताजी द्वारा गौतमस्वामी को की गई वदना देखकर वुद्धिमान वालक ने उसी विधि से महावीर स्वामी को वदन-नमस्कार किया तथा सेवा करने लगा।

पात्र के योग्य भिक्षा-दाता का गुण माना गया है, तो धर्मोपदेशक की विशेषता श्रोता के योग्य उपदेश देने से होती है। इन्द्रभूति गौतम आदि दिग्गज पंडितो से जो उच्चस्तरीय चर्चाये हुई, वे ऊँचे तत्त्व की वाते वालक अतिमुक्तक की पहुँच से वाहर थी, अत भगवान् ने सरल शब्दो मे धर्म-तत्त्व का वह अनुपम व्याख्यान किया कि वालक दीक्षित होने के लिए लालायित हो उठा। भगवान् सरीखे वर्षालु वादल हो और अतिमुक्तक जैसी उर्वर भूमि, फिर योग्य समय पर डाले गये धर्म-वीजों की निष्पत्ति कैसे नही होती ? भगवान् का अमृतमय उपदेश सुनकर वालक हर्षित हो गया।

**७ तएणं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव पव्वइत्तए। अइमुत्तं कुमारं अम्मा-पियरो एवं वयासी—'बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असं-**

बुद्धेसि तुमं पुत्ता ! किण्णं तुमं जाणासि धम्मं ?'

तएणं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—"एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव ण जाणामि, जं चेव ण जाणामि तं चेव जाणामि।" तएणं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—'कहं णं तुमं पुत्ता !' जं चेव जाणासि तं चेव ण जाणासि, जं चेव ण जाणासि तं चेव जाणासि ?'

तएणं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—'जाणामि अहं अम्मयाओ । जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं, ण जाणामि अहं अम्मयाओ ? काहे वा कहिं वा कहं वा केच्चिरेण वा ? ण जाणामि अहं अम्मयाओ ! केहिं कम्मायणेहिं जीवा णेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्मायणेहिं जीवा णेरइय जाव उववज्जंति, एव खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव ण जाणामि, जं चेव ण जाणामि तं चेव जाणामि । तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए ।'

अर्थ—भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर अतिमुक्तक श्रीवन उद्यान से अपने भवन मे माता-पिता के पास आ गये एवं दीक्षित होने की अभिलाषा प्रकट की । माता-पिता बोले—'हे पुत्र ! अभी तुम अबोध एवं बालक हो । संयम तुम्हारे वस

की बात नही है । तुम धर्म से अनजान हो ।'

अतिमुक्तक बोले—'हे माता-पिता ! मै जिसे जानता हूँ उसे नही जानता हूँ और जिसे नही जानता हूँ उसे जानता हूँ।' यह पहेली माता-पिता के समझ मे नही आई, अतः वे पूछने लगे 'हे पुत्र ! तुम जानते हो उसे नही जानते हो और जिसे नही जानते हो उसे जानते हो, इसका क्या अर्थ है ?'

माता-पिता को इस पहेली का गूढ़ार्थ स्पष्ट करते हुए अतिमुक्तक बोले—'हे माता-पिता ! जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा—यह मै जानता हूँ, पर यह नही जानता कि किस काल में, किस स्थान पर, किस प्रकार और कितने समय के बाद मरेगा।'

मै यह तो नही जानता कि किन कर्मो के कारण जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में उत्पन्न होते है ? पर मैं यह तो जानता हूँ कि जीव अपने किए हुए कर्मो के कारण ही विविध गतियो मे उत्पन्न होते है।'

अपने कथन का उपसंहार करते अतिमुक्तक कहते हैं—'इसलिए हे मातापिता ! मैंने आपसे यह कहा था कि—मैं जो जानता हूँ उसे नही जानता हूँ, जो नही जानता हूँ वह जानता हूँ। अतः आप मुझे तत्त्वज्ञान से कोरा अनजान ही समझिए और कृपा पूर्वक संयम धारने की आज्ञा दीजिए। मै मुनि बनना चाहता हूँ।'

**८ तएणं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे णो संचाएंति बहूहिं आघवणाहिं जाव तं इच्छामो ते जाया !**

**एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तएणं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स णिक्खमणं जाव सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं वासाइं सामण्ण परियाओ, गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।**

अर्थ--अतिमुक्तक के माता-पिता विविध वचनों से जब उन्हे नही समझा सके तो, आखिर एक दिन के लिए राज्या-भिषेक कर राजा रूप मे अतिमुक्तक को देखने की इच्छा प्रकट की। माता-पिता के प्रति आदर भाव होने के कारण अति-मुक्तक मौन रहे। महाबल की भाति राज्याभिषेक हो गया यावत् अतिमुक्तक अणगार हो गए। ग्यारह अंगो का अध्ययन किया, बहुत वर्षो तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर भिक्षु-प्रतिमाओ एवं गुणरत्न-संवत्सर आदि तप की आराधना कर के विपुल पर्वत पर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुए।

८ **विवेचन**--श्री भगवती सूत्र शतक ५ उ ४ मे अतिमुक्तक कुमार श्रमण का कतिपय वर्णन इस प्रकार है--

'भगवन् महावीर स्वामी के अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण प्रकृति के भद्र यावत् विनीत थे। एक बार वर्षा होने के बाद रजोहरण व पात्र लेकर शौच निवृत्ति हेतु गए।

वहाँ मार्ग मे एक नाला बह रहा था, उन्होने उस नाले के पानी को पाल बाँधकर रोक लिया तथा अपना पात्र पानी मे छोड कर 'मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे' इस प्रकार वचन कहते हुए वहाँ खेलने लगे। स्थविर मुनियो ने बाल मुनि की क्रीडा देखकर भगवान् से आकर पूछा-'अतिमुक्तक कितने भव करके मुक्त होगे ?'

भगवान् ने स्थविरो के मनोभाव जान कर फरमाया–'अतिमुक्तक प्रकृति का भद्र यावत् विनीत है, यह चरम शरीरी है। इसी भव मे सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा। आप इसकी हीलना, निंदा, गर्हा एवं अवमानना नही करें। संयम समाचारी का बोध नही होने के कारण ही तुम अग्लान भाव मे अतिमुक्तक कुमार श्रमण को स्वीकार करो, उसकी सहायता करो तथा आहार पानी के द्वारा विनय पूर्वक वैयावृत्य करो। स्थविर मुनियो ने भगवान् को वंदना नमस्कार किया एव निर्देशानुसार कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर वैयावृत्य करने लगे।'

॥ छठे वर्ग का पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

## छठा वर्ग : सोलहवाँ अध्ययन

उक्खेवओ सोलमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसिए णयरीए, काम-महावणे चेइए तत्थ णं वाणारसिए अलक्खे णामं राया होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तएणं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्मकहा।

तएणं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, णवरं जेट्ठं पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगाइं, बहुवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

॥ छट्ठो वग्गो समत्तो ॥

अर्थ–छठे वर्ग के सोलहवें अध्ययन के विषय मे पूछने पर सुधर्मा स्वामी फरमाते है–हे जंबू ! उस काल उस समय मे वाणारसी (वनारस) नामक नगरी थी। वहाँ काम महावन नामक रमणीय उद्यान था। उस समय वहाॅ का राजा अलक्ष था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वहाॅ पधारना हुआ। जिनेन्द्र आगमन जान कर जनमेदिनी धर्मश्रवण के लिए समुपस्थित हुई। अलक्ष नरेश को यह वृतात ज्ञात हुआ तो कोणिक की भाति ऋद्धि सत्कार के साथ दर्शन करने आए। भगवान् ने अलक्ष नरेश एवं परिषदा को धर्मकथा फरमाई।

अलक्ष राजा को वैराग्य हुआ एवं उदायन राजा की भाति दीक्षित हुए। विशेषता यह है कि उदायन ने भाणजे को उत्तराधिकारी वनाया था और अलक्ष ने वडे पुत्र का राज्याभिषेक किया। संयम ले कर ग्यारह अंगो का अध्ययन किया एवं बहुत वर्ष तक संयम की आराधना कर सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए।

॥ छठा वर्ग समाप्त ॥



# सप्तम वर्ग

जइ णं भंते ! सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा—

नंदा तह नंदवई, नंदोत्तर-नंदसेणिया चेव।
मरुया-सुमरुया-महमरुया, मरुद्देवा य अट्ठमा ॥१॥
भद्दा य सुभद्दा य, सुजाया-सुमणाइया।
भूयदिण्णा य बोद्धव्वा, सेणियभज्जाण णामाइं ॥२॥

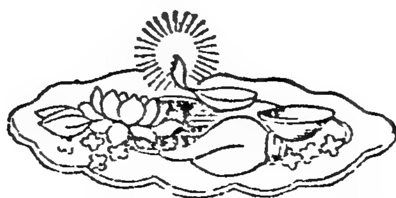
जइ णं भंते ! तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो णंदा णामे देवी होत्था, वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। तएणं सा णंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता जाणं दुरुहइ जहा पउमावई जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जाव सिद्धा एवं तेरस वि णंदागमेण णेयव्वाओ, णिक्खेवओ।

॥ सत्तमो वग्गो समत्तो ॥

अर्थ–सप्तम वर्ग मे हे जंबू ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने तेरह अध्ययनो का कथन किया है–(१) नंदा (२) नंदवती (३) नंदोत्तरा (४) नंदश्रेणिका (५) मरुता (६) सुमरुता (७) महामरुता (८) मरुदेवा (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमनातिका (१३) भूतदत्ता। ये तेरह ही श्रेणिक महाराज की भार्याये थी।

श्री जम्बूस्वामी ने पूछा–यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नंदा यावत् भूतदत्ता के तेरह अध्ययनो का प्ररूपण किया है, तो प्रथम अध्ययन मे क्या भाव फरमाये है ? सुधर्मा स्वामी ने फरमाया–उस समय राजगृह नगर व गुणशीलक उद्यान था। श्रेणिक महाराज राज्य करते थे। उनके नंदा (अभयकुमारजी की माता) नामक रानी थी। धर्मोपदेश सुन-कर नंदा देवी को वैराग्य हुआ। संयम धारण कर ग्यारह अंगो का अध्ययन किया। पद्मावती आर्या के समान निरवशेष जानना। वीस वर्ष की दीक्षा पर्याय पाल कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई। तेरह ही अध्ययन सरीखे वर्णन वाले जान लेना चाहिए।

॥ सप्तम वर्ग समाप्त ॥



# अष्टम वर्ग

१ जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

काली सुकाली महाकाली, कण्हा सुकण्हा महाकण्हा
वीरकण्हा य बोद्धव्वा, रामकण्हा तहेव य।
पिउसेणकण्हा णवमी, दसमी महासेणकण्हा य ॥

अर्थ—श्री जंबूस्वामी ने पूछा—हे सुधर्मा भगवन् ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें वर्ग के जो भाव फरमाये सो आपके श्रीमुख से मैंने सुने। कृपापूर्वक कहिए कि आठवें वर्ग में प्रभु ने किन भावों की निदर्शना की है।

हे जंबू ! आठवें वर्ग में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दस अध्ययन फरमाये है—(१) काली रानी (२) सुकाली (३) महाकाली (४) कृष्णा (५) सुकृष्णा (६) महाकृष्णा (७) वीरकृष्णा (८) रामकृष्णा (९) पितृसेनकृष्णा और (१०) महासेन कृष्णा।

२ जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा

पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया। तत्थ णं चंपाए णयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली णामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा णंदा जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

अर्थ—जंबू स्वामी ने पूछा—आठवे वर्ग के दस अध्ययन फरमाये है, तो प्रथम अध्ययन के क्या भाव फरमाये है?

श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते है—श्रेणिक महाराज के जीवन-काल मे राजगृह नगर राजधानी के रूप मे रहा, जब वे काल धर्म को प्राप्त हो गये तो कोणिक राजा ने चम्पा को राजधानी बना लिया। उस काल उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी, पूर्णभद्र यक्षायतन था। कोणिक राजा का शासन चल रहा था। श्रेणिक महाराज की रानी एव कोणिक महाराज की छोटी माता काली नामक रानी थी। नंदा के समान उसने भी दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अंगो का अध्ययन किया एवं उपवास बेला तेला आदि विविध तपस्याओ से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

२ विवेचन—कोणिक-चेडा संग्राम मे जब काल कुमार मारा गया

तब काली रानी को वैराग्य हो गया, इसी प्रकार दसों ही रानियों के दस पुत्र चेडा महाराजा के अमोघ बाण से मारे गए तथा दसों ने ही संसार की असारता जान कर संयम स्वीकार किया था। श्री निरयावलिका, श्री भगवती आदि सूत्रों में विशेष वर्णन जाना जा सकता है।

३ तएणं सा काली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं अज्जाओ तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।' 'अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।' तएणं सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

अर्थ—एक बार काली आर्या ने आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आकर वंदना-नमस्कार कर के निवेदन किया—

हे भगवती ! आपकी अनुज्ञा होने पर मैं रत्नावली नामक तपकर्म अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ। साध्वी प्रमुखा श्रीचन्दनबालाजी ने अनुज्ञा प्रदान कर दी। तब अनुज्ञापित काली आर्या ने रत्नावली नामक तप विशेष की इस प्रकार आराधना की—

४ तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठ छट्ठाइं करेइ करित्ता सव्वकाम-

गुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्व-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीस मं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वी-सइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करि[illegible]-कामगुणियं पारेइ, पारित्ता ।

अर्थ—काली आर्या ने [illegible]

पहले उपवास किया [illegible]

सेवन वर्जित नही था, पारणा कर के वेला किया, फिर पारणा कर के तेला किया, फिर आठ वेले किये। फिर उपवास किया। फिर वेला किया। फिर तेला किया। इस प्रकार अन्तर-रहित चोला किया, पाँच किये, छः किये, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह और सोलह किये। चौतीस वेले किये।

**चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता**

**सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ ।**

अर्थ–पारणा कर के सोलह दिन की तपस्या की। पारणा कर के फिर पन्द्रह दिन की तपस्या की। इस प्रकार पारणा करती हुई क्रमशः चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। पारणा कर के फिर आठ बेले किये। पारणा कर के तेला किया। पारणा कर के फिर बेला किया। फिर पारणा कर के उपवास किया और फिर पारणा किया।

**एवं खलु सा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ ।**

अर्थ–इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की एक परिपाटी (लड़ी) की आराधना की। रत्नावली की यह एक परिपाटी एक वर्ष, तीन महीना और बाईस दिन में पूर्ण होती है। इस एक परिपाटी मे तीन सौ चौरासी दिन तपस्या के और अठासी दिन पारणा के होते है। इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते है।

**विवेचन**–रत्नावली तप कर्म का स्वरूप सूत्र एवं अर्थ से ऊपर

दिया गया है। तपस्या के दिन एवं पारणे के दिनो की संयुक्त संख्या १ वर्ष ३ महीने २२ दिन दी गई है। इसमे तपस्या के दिनों का परिमाण इस प्रकार है—

१+२+३+ ( ८×२= )१६+१+२+३+४+५+६+७+८+९+१०+ ११+१२+१३+१४+१५+१६+ ( ३४×२= ) ६८+१६+१५+१४+ १३+१२+११+१०+९+८+७+६+५+४+३+२+१+ (८×२=) १६+ ३+२+१=३८४ दिन। पारणे के दिनो का परिमाण इस प्रकार है-

१+१+१+८+१६+३४+१६+८+३=८८ दिन।

इस प्रकार ३८४+८८=४७२ दिनो में रत्नावली तप की एक परिपाटी होती है।

**५ तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता एवं जहा पढमाए परिवाडिए तहा बीयाए वि णवरं सव्वत्थपारणगए विगइवज्जं पारेइ जाव आराहिया भवइ।**

अर्थ—इसके वाद काली आर्या ने रत्नावली तप की दूसरी परिपाटी प्रारम्भ की। उन्होने पहले उपवास किया। उपवास का पारणा किया। पारणे में किसी भी प्रकार के विगय का सेवन नही किया अर्थात् दूध, दही, घी, तेल और मीठा—इन पांच विगयो का लेना वन्द कर दिया। इस प्रकार उन्होने उपवास का पारणा कर के वेला किया। पारणा किया। इस दूसरी परिपाटी के सभी पारणो मे पाँचो विगय का त्याग कर दिया। इसी प्रकार तेला किया। पारणा कर के आठ वेले किये। पारणा कर के उपवास किया। फिर वेला

किया। तेला किया, फिर चार, पाँच यावत् सोलह उपवास तक किये। फिर चौतीस वेले किये। पारणा कर के सोलह किये। फिर पन्द्रह, चौदह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, नौ, आठ, सात, छ, पाँच, चार, तीन, दो और एक उपवास किया। फिर आठ वेले किये। फिर तेला, फिर वेला, फिर उपवास किया। जिस प्रकार पहली परिपाटी की, उसी प्रकार दूसरी परिपाटी भी की, परन्तु इसमे सभी पारणे विगय-वर्जित किये।

**तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता अलेवाडं पारेइ, सेसं तहेव। एवं चउत्था परिवाडी, णवरं सव्वत्थपारणए आयंबिल पारेइ। सेसं तं चेव।**

अर्थ–इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी की। तीसरी परिपाटी मे पारणे के दिन विगय का लेप मात्र भी छोड दिया। इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी की, परन्तु इसके पारणे मे आयम्बिल किया।

**पढमम्मि सव्वकामपारणयं, बीइयए विगइवज्जं।**
**तइयम्मि अलेवाडं, आयंबिलओ चउत्थम्मि॥**

अर्थ–प्रथम परिपाटी मे पारणे मे सर्वकामगुण युक्त, दूसरी मे विगय त्याग, तीसरी में लेप का भी वर्जन किया और चौथी आयविल से की गई।

**तएणं सा काली अज्जा रयणावलीतवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं**

अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

अर्थ—इस प्रकार काली आर्या ने रत्नावली तप की चारो परिपाटी पांच वर्ष, दो मास और अट्ठाईस दिन में पूर्ण कर के चन्दनवाला आर्या के पास उपस्थित हुई और वन्दन-नमस्कार किया। फिर बहुत-से उपवास, वेला, तेला आदि तपस्याओ से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

**विवेचन**—रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी मे प्रासुक एवं एषणीय सभी वस्तुएँ लेना कल्पनीय है। दूसरी परिपाटी मे ऊपर से दिया जाता हुआ घी, दूध, दही, शक्कर आदि तो नही लिये जा सकते पर चुपडी हुई रोटी, छमके वाला साग, आचार, रायता आदि का वर्जन नही किया जाता है।

तीसरी परिपाटी मे विगयो का पूर्ण प्रतिषेध है। घी, दूध, दही, मक्खन, गुड, शक्कर, तेल आदि से बनी वस्तुओ का वर्जन तो किया ही जाता है पर विगयो के स्पर्श वाली वस्तुओ को भी ग्रहण नही किया जाता। इस पर भी नमक, खटाई आदि का वर्जन नही होने से मक्खन निकाली हुई छाछ, लूणिया नीम्बू, विना तेल की आचार की मिर्चे, पापड खीचिया, गर्म करके ठण्डी की गई छाछ, चना—चवेना, फूली, खाखरा आदि वे बहुसख्यक व्यञ्जन ग्रहण किए जा सकते हैं यानी नीवि मे जो द्रव्य ग्राह्य है वे तीसरी परिपाटी मे कल्पते है।

चौथी परिपाटी मे विगयो के साथ नमक, खटाई आदि अन्य रसो का भी निषेध किया जाता है। लूखी अलूणी रोटी आदि को अचित

ल मे भिगो कर खाए जाने रूप आयंबिल के पारणे चौथी परिपाटी में किये जाते हैं। विशेष ज्ञानी कहे वही प्रमाणभूत है।

**६ तएणं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं जाव धमणिसंतया जाया या वि होत्था। से जहा णामए इंगालसगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासि-पलिच्छण्णा तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव अईव उव-सोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ।**

अर्थ–इस प्रकार महान् तपस्या से काली आर्यिका का शरीर प्राय मास और रक्त से रहित हो गया। उनके शरीर की धमनियाँ (नाडियाँ) प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। वह सूख कर अस्थिपञ्जर (हड्डियो का ढाँचा) मात्र शेष रह गई। उठते, बैठते, चलते, फिरते, उनके शरीर की हड्डियो से 'कड-कड' शब्द होता था। जिस प्रकार सूखे काष्ठो से या सूखे पत्तो से अथवा कोयलो से भरी हुई चलती गाड़ी से ध्वनि होती है, उसी प्रकार उसके शरीर की हड्डियो से भी ध्वनि होने लग गई। यद्यपि श्री काली आर्या का शरीर मास और रक्त के सूख जाने के कारण रूक्ष हो गया, तथापि भस्म से आच्छादित अग्नि के समान तप-तेज की शोभा से अत्यन्त शोभित हो रहा था ॥६॥

**विवेचन**–कमलकोमल राजरानिया जिन्होने सूर्यधूप की अनुभूति नही की, भूख-प्यास एव सर्दी गर्मी का परिचय नाम जानने तक ही सीमित था। दूध से कुल्ले करने वाली काली आर्या सरीखी सुकुमार-शरीरी आत्माये सयम स्वीकार करके अपना अस्तित्व ही बदल देती

प्रतीत होती है। घोर तप से कर्मों को तप्त करती हुई भी वे तप्त नहीं होती। मुक्ति प्राप्ति का अटल उत्तुंग अभिग्रह धारण कर वे कर्म-कटक मे वीरवरबाला की भांति जूझती है। संयम समरांगण की श्रेष्ठ सुभट सिद्ध होती है। जब लक्ष्य महान् हो, साधक दृढ़ संकल्प एवं कृतनिश्चय से युक्त हो तो सारी बाधाएँ दूर हो जाती है।

७ तएणं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा धिई संवेगे वा ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्ज-चंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्ज-चंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाए समाणीए संलेहणा झूसणाझूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्ज-चंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अज्ज-चंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा जाव विहरित्तए।" "अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

तओ काली अज्जा अज्ज-चंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा झूसणा झूसिया जाव विहरइ।

अर्थ—एक दिन पिछली रात्रि के समय काली आर्या के हृदय में स्कन्दक के समान इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ-

"तपस्या के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है। इसलिए जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग आदि विद्यमान है, तब तक मुझे उचित है कि कल सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनबाला आर्या को पूछ कर उनकी आज्ञा से संलेखना-झूषणा को सेवित करती हुई भक्तपान का प्रत्याख्यान कर के, मृत्यु को न चाहती हुई विचरण करूँ"–ऐसा विचार कर दूसरे दिन सूर्योदय होते ही वह आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आई और वन्दन-नमस्कार कर हाथ जोड कर बोली–"हे आर्ये ! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर संलेखना-झूषणा करना चाहती हूँ।" आर्य चन्दनबाला आर्या ने कहा–"हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हे सुख हो, वैसा करो। धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो" आर्य चन्दन-बाला से आज्ञा प्राप्त कर काली आर्या ने संलेखना की।

**सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडि-पुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव चरिमेहिंउस्सासणीसासेहिं सिद्धा।**

अर्थ–काली आर्या ने आर्य चन्दनबाला आर्या से सामा-यिक आदि ग्यारह अंगो का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्र का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना

से आत्मा को सेवित कर, साठ भक्तों को अनशन से छेदन कर जिस अर्थ के लिये संयम ग्रहण किया था, उस अर्थ को अपने अन्तिम उच्छ्वासों में प्राप्त कर के वह सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हो गई।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

**उक्खेवओ बीयस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी। पुण्णभद्दे चेइए, कोणिए राया, तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली णामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता जाव बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।**

अर्थ—जम्बू स्वामी ने श्री सुधर्मा स्वामी से पूछा—"हे भगवन्! आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन का क्या भाव है?"

अर्थ—सुधर्मा स्वामी ने कहा—"हे जम्बू! उस काल उस समय चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। कोणिक राजा राज्य करते थे। श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता 'सुकाली' रानी थी। जिस प्रकार काली रानी प्रव्रजित हुई थी, उसी प्रकार सुकाली रानी भी प्रव्रजित हुई और बहुत-से उपवास, बेला, तेला आदि तपस्या करती हुई विचरने लगी।"

**तएणं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव**

अज्जचंदणा अज्जा जाव इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेंहि अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, णवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडिए संवच्छरो पंच मासा बारस य अहोरत्ता। चउण्हं पंच वरिसा णव मासा अट्ठारस दिवसा, सेसं तहेव। णव वासा परियाओ जाव सिद्धा।

अर्थ–एक समय सुकाली आर्या, चन्दनबाला आर्या के समीप गई और वन्दन-नस्कार कर हाथ जोड़ कर वोली–– "हे महाभागे ! मै आपकी आज्ञा प्राप्त कर कनकावली तप करना चाहती हूँ।" उत्तर में उन्होने कहा–"जैसा तुम्हे सुख हो, वैसा करो।" इसके वाद सुकाली आर्या ते काली आर्या से आराधित रत्नावली तप के समान 'कनकावली' तप किया। रत्नावली तप से कनकावली तप में यह विशेषता है कि रत्नावली तप मे जहा तीन स्थानो पर आठ-आठ और चौतीस वेले किये जाते है, वहाँ कनकावली तप मे उतने ही तेले किये जाते है। इस कनकावली तप की एक परिपाटी में एक वर्ष, पाँच महीने और वारह दिन लगते है। इसमे अठासी दिन पारणे के और एक वर्ष, दो महीने और चौदह दिन तपस्या के होते है। चारो परिपाटी को पूरा करने मे पाँच वर्ष, नौ महीने और अठारह दिन लगते है।

शेष सारा वर्णन काली आर्या के समान है। नौ वर्ष चारित्र का पालन कर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया।

॥ दूसरा अध्ययन समाप्त ॥

एवं महाकाली वि, णवरं खुड्डागं-सीह-णिक्कीलियं तवं कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तंजहा— चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, परित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता

**सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता।**

अर्थ–जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा–"हे भगवन् ! आठवे वर्ग के तीसरे अध्ययन का क्या भाव है ?

सुधर्मा स्वामी ने कहा–"हे जम्बू ! तीसरे अध्ययन मे महाकाली रानी का वर्णन है। वह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। उन्होने भी सुकाली रानी के समान दीक्षा धारण की और 'लघुसिह-निष्क्रीडित' नामक तप किया। वह इस प्रकार है–सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया। इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणो मे विगयो का सेवन वर्जित नही था, फिर बेला किया। पारणा कर के उपवास किया। फिर पारणा कर के तेला किया। इस प्रकार बेला, चोला, तेला, पचोला, चोला, छह, पॉच, सात, छह, आठ, सात, नौ और आठ किये।

**वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता**

बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ।

अर्थ—फिर नौ, सात, आठ, छह, सात, पाँच, छह, चार, पांच, तीन, चार, दो, तीन, उपवास, दो और उपवास किया। इस प्रकार लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की एक परिपाटी की।

तहेव चत्तारि परिवाडीओ। एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा अट्ठावीसा य दिवसा जाव सिद्धा।

अर्थ—एक परिपाटी मे छह महीने और सात दिन लगे। जिसमे पारणे के तेतीस दिन और तपस्या के पाँच मास और तीन दिन हुए। इस प्रकार महाकाली आर्या ने चार परिपाटी की, जिसमें दो वर्ष और अट्ठाईस दिन लगे।

इस प्रकार महाकाली आर्या ने लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की सूत्रोक्त विधि से आराधना की। तत्पश्चात् काली आर्या ने अनेक प्रकार की फुटकर तपस्याएँ की। अन्त मे संथारा कर

के सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर के मोक्ष प्राप्त हुई।

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

**एवं कण्हा वि, णवरं महासीहणिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं, णवर चोत्तीसइमं जाव णेयव्व, तहेव ऊसारेयव्वं, एक्काए परिवाडीए एगं वरिसं छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छ वरिसा दो मासा बारस य अहोरत्ता। सेसं जहा कालीए जाव सिद्धा।**

अर्थ–इस प्रकार कृष्णादेवी का भी चारित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। दीक्षा ले कर आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर के 'महासिंह-निष्क्रीडित' तपस्या की। जिस प्रकार लघुसिंह निष्क्रीडित तप की विधि है, उसी प्रकार महासिंह-निष्क्रीडित तप की भी है। किन्तु विशेषता यह है कि लघुसिंह-निष्क्रीडित तप मे एक उपवास से ले कर नौ उपवास तक ऊपर चढ कर उसी क्रम से पीछे उतरा जाता है। किंतु महासिंह-निष्क्रीड़ित तप मे एक उपवास से ले कर सोलह उपवास तक ऊपर चढ कर फिर उसी क्रम से नीचे उतरा जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है–सर्वप्रथम उपवास किया, पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के उपवास किया। इस प्रकार तेला, बेला, चोला, तेला, पचोला, चोला, छह, पाँच, सात, छह, आठ, सात, नौ, आठ, दस, नौ, ग्यारह, दस, बारह,

ग्यारह, तेरह, बारह, चौदह, तेरह, पन्द्रह, चौदह, सोलह, पन्द्रह, सोलह, चौदह, पन्द्रह, तेरह, चौदह, बारह, तेरह, ग्यारह, बारह, दस, ग्यारह, नौ, दस, आठ, नौ, सात, आठ, छह, सात, पाच, छह, चोला, पचोला, तेला, चोला, वेला, तेला, उपवास, वेला और उपवास। इस प्रकार एक परिपाटी की। जिसमें एक वर्ष, छह महीने और अठारह दिन लगे। इसमें इकसठ पारणे हुए। एक वर्ष चार महीने और सतरह दिन तपस्या हुई। चार परिपाटियो में छह वर्ष, दो महीने और बारह दिन लगे।

इस प्रकार कृष्णा आर्या ने महासिह-निष्क्रीडित तप की विधिपूर्वक आराधना की। अन्त मे संथारा कर के काली आर्या के समान ये भी मोक्ष प्राप्त हुई।

विवेचन—महासिंह-निष्क्रीडित तप का स्वरूप इस प्रकार है—

सिंह का बच्चा थोडा चलता है अत उससे उपमित कर तप विशेष को लघुसिंह-निष्क्रीडित तप कहा गया है। वडा शेर ज्यादा चलता है अतः उसके समान तप को महासिंह-निष्क्रीडित तप कहा जाता है। जब सिंह मस्ती मे होता है तो कुछ कदम आगे भरता है, कुछ डग पीछे भरता है, इस प्रकार इन दोनो तपो मे दो कदम आगे भरते हुए एक कदम पीछे हटने का स्वरूप दर्शाया गया है।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

एवं सुकण्हा वि, णवरं सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स। दोच्चे सत्तए

**दो-दो भोयणस्स दो दो पाणगस्स। तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स तिण्णि पाणगस्स। चउत्थे चउ, पंचमे पंच, छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्तदत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ, सत्त पाणगस्स।**

अर्थ—इसी प्रकार सुकृष्णा आर्या का भी चरित्र जानना चाहिए। यह भी श्रेणिक राजा की भार्या और कौणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होने भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'सप्तसप्तमिका' भिक्षु-प्रतिमा तप करने लगी। जिसकी विधि इस प्रकार है—प्रथम सप्ताह में गृहस्थ के घर से प्रतिदिन एक दत्ति अन्न और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह मे प्रतिदिन दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। तीसरे सप्ताह मे प्रतिदिन तीन-तीन दत्ति, चौथे सप्ताह मे चार-चार दत्ति और पॉचवें सप्ताह में पॉच-पॉच दत्ति, छठे सप्ताह में छ-छः दत्ति और सातवें सप्ताह में प्रतिदिन सात-सात दत्ति अन्न की और पानी की ग्रहण की जाती है।

**एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया। अज्जचंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं**

अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उव-संपज्जित्ताणं विहरित्तए।" "अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेह।"

अर्थ–उनपचास रात-दिन में एक सौ छियानवे भिक्षा की दत्ति होती है। सुकृष्णा आर्या ने इसी प्रकार सूत्रोक्त विधि के अनुसार 'सप्तसप्तमिका' पडिमा की यथावत् आराधना की। आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह मे सात दत्तियां हुई, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे मे इक्कीस, चौथे में अट्ठाईस, पांचवें में पैतीस, छठे मे बयालीस और सातवे मे उनपचास। इस प्रकार सभी मिला कर एक सौ छियानवे दत्तियां हुई।

इसके बाद सुकृष्णा आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या के समीप आई और वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोली–'हे पूज्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त कर मै अष्टअष्टमिका भिक्खुपडिमा तप करना चाहती हूँ।" आर्य चन्दनबाला आर्या ने कहा–"हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हे सुख हो, वैसा करो, धर्म-कार्य मे प्रमाद मत करो।"

तएणं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसं-पज्जित्ताणं विहरइ, पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स दत्ति जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्ति पडिगाहेइ अट्ठ पाणगस्स

**एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता ।**

अर्थ–इसके बाद सुकृष्णा आर्या, 'अष्टअष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा' स्वीकार कर विचरने लगी। उन्होने प्रथम अष्टक मे एक दत्ति आहार की और एक दत्ति पानी की ली और दूसरे अष्टक मे दो दत्ति आहार की और दो दत्ति पानी की ली । इसी प्रकार क्रम से आठवे अष्टक में आठ दत्ति आहार और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की । इस प्रकार अष्टअष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा तपस्या चौसठ दिन-रात मे पूर्ण हुई । जिसमे आहार-पानी की दो सौ अठासी दात हुई । सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि से इस अष्टअष्टमिका प्रतिमा की आराधना की ।

**णवणवमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे णवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्के-क्कं पाणगस्स, जाव णवमे णवए णव-णव दत्ति भोय-णस्स पडिगाहेइ णव पाणगस्स । एवं खलु णवणवमियं भिक्खुपडिमं एकासीइ राइंदिएहिं चउहिं पंचोत्तरेहिं, भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता ।**

अर्थ–इसके बाद आर्य चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर उसने 'नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा' अंगीकार की । प्रथम नवक में एक दत्ति आहार और एक दत्ति पानी की ग्रहण की । इस क्रम से नौवे नवक मे नौ दत्ति आहार और नौ दत्ति पानी की ग्रहण

की। यह नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा इक्यासी दिन-रात मे पूर्ण हुई। इसमे आहार-पानी की चार सौ पॉच दत्ति हुई। इस नवनवमिका भिक्षु-प्रतिमा का सूत्रोक्त विधि अनुसार आराधन किया।

**दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे दसए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स जाव दसमे दसए दस-दस भोयणस्स, दस-दस पाणगस्स, एवं खलु एवं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ।**

अर्थ—इसके बाद सुकृष्णा आर्या ने दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार की। इसके प्रथम दशक मे एक दत्ति भोजन और एक दत्ति पानी की ग्रहण की। इस प्रकार क्रमशः दसवे दशक मे दस दत्ति भोजन और दस दत्ति पानी की ग्रहण की। यह दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा एक सौ दिन-रात मे पूर्ण होती है। इसमे आहार-पानी की सम्मिलित रूप से पाँच सौ पचास दत्ति होती है। इस प्रकार इन भिक्षु-प्रतिमाओं का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया।

**आराहित्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमासविविह तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तएणं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा।**

अर्थ—फिर सुकृष्णा आर्या उपवासादि से लेकर

मासखमण और मासखमण आदि विविध प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी । इस उदार एवं घोर तपस्या के कारण सुकृष्णा आर्या अत्यधिक दुर्बल हो गई । अन्त मे संथारा कर के सम्पूर्ण कर्मो का क्षय कर सिद्धगति को प्राप्त हुई ।

**विवेचन**–श्री उववाई सूत्र मे इन प्रतिमाओ का भी उल्लेख है। इन प्रतिमाओ के परिवहन मे केवल दत्तियो का परिमाण ही है, आसन आदि तो साध्वियो के लिए निषिद्ध ही है । दिखने मे यह तप साधारण लगता है, पर इससे सुकृष्णा आर्या का शरीर काली आर्या की भाति कृश हो गया था । महान् अवमोदरिका रूप यह तप भी विशिष्ट है ।

**॥ पाँचवाँ अध्ययन समाप्त ॥**

एवं महाकण्हावि णवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तं जहा–चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठम करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं
पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणि
पारेइ ।

अर्थ—इसी प्रकार राजा श्रेणिक की भार्या और [illegible] कोणिक की छोटी माता महाकृष्णा रानी ने भी भगवान् [illegible] पास दीक्षा अंगीकार की। महाकृष्णा आर्या आर्य [illegible] आर्या की आज्ञा ले कर 'लघु-सर्वतोभद्र' तप करने [illegible]

उसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम उन्होने उपवास किया और पारणा किया (इसकी भी प्रथम परिपाटी के सभी पारणो मे विगयो का सेवन वर्जित नही है ) पारणा कर के बेला किया। पारणा कर के तेला किया। इसी प्रकार चोला, पचोला किया, फिर तेला, चोला, पचोला, उपवास, बेला किया। फिर पचोला, उपवास, बेला, तेला, चोला। फिर बेला, तेला चोला, पचोला, उपवास किया। फिर चोला, पचोला, उपवास, बेला, तेला किया। इस प्रकार महाकृष्णा आर्या ने 'लघुसर्वतोभद्र' तप की पहली परिपाटी पूरी की।

**एवं खलु खुड्डागसव्वओभद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडिं, तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता जाव विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ, पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो मासो दस य दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।**

अर्थ—इस एक परिपाटी मे पूरे सौ दिन लगे, जिसमे पच्चीस दिन पारणे के और पचहत्तर दिन तपस्या के हुए। इसके बाद इस तप की दूसरी परिपाटी की। इसमे पारण मे विगय का त्याग कर दिया। तीसरी परिपाटी मे पारणे के दिन विगय के लेपमात्र का भी त्याग कर दिया। इसके बाद चौथी परिपाटी की। इसमे पारणे के दिन आयम्बिल किया। इस प्रकार उन्होने लघुसर्वतोभद्र तप की चारो परिपाटी की। इनमे एक वर्ष, एक मास और दस दिन लगे। इस प्रकार इस तप

की सूत्रोक्त विधि के अनुसार आराधना की। अन्त में संथारा करके सभी कर्मों का क्षय कर सिद्ध गति को प्राप्त हुई।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

**एवं वीरकण्हा वि, णवरं महालयं सव्वओभद्दं तवो-कम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।**

**तंजहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता। पढमा लया।**

अर्थ—इसी प्रकार वीरकृष्णा रानी का चरित्र भी जानना चाहिये। यह श्रेणिक राजा की भार्या और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होंने भी दीक्षा अंगीकार की और आर्या चन्दनवाला आर्या की आज्ञा ले कर 'महासर्वतोभद्र' तप करने लगी। इसकी विधि इस प्रकार है—सब से पहले उपवास किया फिर पारणा किया। फिर वेला किया। इसी क्रम से तेला, चोला, पचोला छः और सात किये। यह प्रथम लता हुई।

**दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारि**

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता। बीया लया।

अर्थ—फिर चोला, पचोला, छः, सात, उपवास, वेला और तेला किया। यह दूसरी लता हुई।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्व पारित्ता। तइया

अर्थ—फिर । फिर चोला, पचोला । यह तो

अट्ठमं सव्वकाम

दसमं करेइ, व्वकामगु

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता।

अर्थ—फिर तेला, चोला, पचोला, छः, सात, उपवास और वेला किया। यह चौथी लता हुई।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता। पंचमी लया।

अर्थ—फिर छः, सात, उपवास, वेला, तेला, चोला और पचोला किया। यह पांचवी लता हुई।

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता —समं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुगिय पारेइ, पारित्ता छट्ठी लया।

अर्थ—फिर वेला, तेला, चोला, पचोला, छः, सात और उपवास किया। यह छठी लता हुई।

दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता। सत्तमी लया।

अर्थ—फिर पचोला, छ, सात, उपवास, वेला, तेला और चोला किया। यह सातवी लता हुई।

इस प्रकार सात लता की एक परिपाटी हुई।

एक्काए कालो अट्ठमासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठ मासा वीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

अर्थ—इसमे आठ मास और पॉच दिन लगे। जिनमें उनपचास दिन पारणे के और छ मास सोलह दिन तपस्या के हुए। इसकी प्रथम परिपाटी मे पारणो मे विगय वर्जित

नही किया। दूसरी परिपाटी मे पारणे मे विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी मे लेप मात्र का भी त्याग कर दिया और चौथी परिपाटी में पारणे मे आयम्बिल किया। चारो परिपाटी को पूर्ण करने मे दो वर्ष, आठ मास और वीस दिन लगे। उसने इस तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया यावत् सिद्ध-गति प्राप्त की।

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

**एवं रासकण्हा वि, णवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तं जहा—**

**दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता। पढमा लया।**

अर्थ—रामकृष्णा देवो का चरित्र भी इसी प्रकार है। यह भी श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक की छोटी माता थी। दीक्षा ली और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्त कर 'भद्रोत्तर-प्रतिमा' तप किया। उसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम पचोला किया। पारणा किया। फिर क्रमश छ, सात, आठ और नौ किये। प्रथम परिपाटी के सभी पारणो में विगयो का सेवन वर्जित नही था। यह प्रथम लता हुई।

सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ। बीया लया।

अर्थ–फिर सात, आठ, नौ, पाँच और छह किये। यह दूसरी लता हुई।

वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। तइया लया।

अर्थ–फिर नौ, पाँच, छह, सात और आठ किये। यह तीसरी लता हुई।

चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणिय

पारेइ । चउत्थी लया ।

अर्थ—फिर छह, सात, आठ, नौ और पाँच किये । यह चौथी लता हुई ।

अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। पंचमी लया ।

अर्थ—फिर आठ, नौ, पाँच छह और सात किये । यह पाँचवी लता हुई ।

एक्काए कालो छम्मासा वीसा य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा । सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा ।

अर्थ—एक परिपाटी मे छह मास और वीस दिन लगे। चारो परिपाटी मे दो वर्ष, दो मास और वीस दिन लगे ।

रामकृष्णा आर्या भी काली आर्या के समान सभी कर्मों का क्षय कर के सिद्ध पद को प्राप्त हुई ।

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

एवं पिउसेणकण्हा वि णवर मुत्तावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तं जहा—चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं

पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ. पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

अर्थ—इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का वर्णन जानना चाहिए। वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होने दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा ले कर मुक्तावली तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया।

इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणो मे विगयों के सेवन वर्जित नही है। फिर त्रेला किया। पारणा किया। फिर उपवास किया। पारणा किया। फिर तेला किया। इस प्रकार वीच में एक-एक उपवास करती हुई पितृसेनकृष्णा आर्या पन्द्रह उपवास तक वढी। फिर उपवास। वीच मे सोलह। सोलह के वाद उपवास और फिर उपवास किया। फिर इसी प्रकार पश्चानुपूर्वी से मध्य मे एक-एक उपवास करती हुई जिस प्रकार चढी थी, उसी प्रकार पन्द्रह उपवास से एक उपवास तक क्रम से उतरी। इस प्रकार मुक्तावली तप की एक परिपाटी समाप्त हुई। काली आर्या के समान इसकी चारो परिपाटियाँ पूर्ण की। एक परिपाटी में ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन लगे और चारो परिपाटियो मे तीन वर्ष और दस महीने लगे। अन्त में संलेखना संथारा किया और समस्त कर्मो का क्षय कर के सिद्धपद को प्राप्त हुई।

॥ नौवॉ अध्ययन समाप्त ॥

**१ एवं महासेणकण्हा वि णवरं आयंबिल वड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।**

**तं जहा—आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता**

पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।

अर्थ—इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का वर्णन जानना चाहिए। वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। इन्होने दीक्षा अंगीकार की और आर्य चन्दनवाला आर्या की आज्ञा ले कर मुक्तावली तप किया। इसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम उपवास किया। पारणा किया।

इसकी भी पहली परिपाटी के सभी पारणों मे विगयो के सेवन वर्जित नही है। फिर बेला किया। पारणा किया। फिर उपवास किया। पारणा किया। फिर तेला किया। इस प्रकार बीच मे एक-एक उपवास करती हुई पितृसेनकृष्णा आर्या पन्द्रह उपवास तक बढी। फिर उपवास। बीच मे सोलह। सोलह के बाद उपवास और फिर उपवास किया। फिर इसी प्रकार पश्चानुपूर्वी से मध्य मे एक-एक उपवास करती हुई जिस प्रकार चढी थी, उसी प्रकार पन्द्रह उपवास से एक उपवास तक क्रम से उतरी। इस प्रकार मुक्तावली तप की एक परिपाटी समाप्त हुई। काली आर्या के समान इसकी चारो परिपाटियाँ पूर्ण की। एक परिपाटी में ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन लगे और चारो परिपाटियो मे तीन वर्ष और दस महीने लगे। अन्त में संलेखना संथारा किया और समस्त कर्मो का क्षय कर के सिद्धपद को प्राप्त हुई।

॥ नौवाँ अध्ययन समाप्त ॥

**१ एवं महासेणकण्हा वि णवरं आयंबिल वड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।**

**तं जहा—आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता**

छ आयंविलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति, चउत्थंतरियाइं जाव आयंविलसयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ ।

अर्थ—इसी प्रकार महासेनकृष्णा का वर्णन भी जानना चाहिये । वह राजा श्रेणिक की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी । दीक्षा ली और आर्य चन्दनवाला आर्या की आज्ञा ले कर उसने 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप किया । उसकी विधि इस प्रकार है—सर्व प्रथम आयम्बिल किया । दूसरे दिन उपवास किया, फिर दो आयम्बिल किये । फिर उपवास किया । फिर तीन आयम्बिल किये । फिर उपवास किया । फिर चार आयम्बिल किये । फिर उपवास किया । फिर पाँच आयम्बिल किये । फिर उपवास किया । फिर छ आयम्बिल किये । फिर उपवास किया । इस प्रकार मध्यम मे एक-एक उपवास करती हुई एक सो आयम्बिल तक किये । फिर उपवास किया । इस प्रकार 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप पूरा किया ।

२—तएणं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंविलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसेहिं वासेहिं तिहिं य मासेहिं वीसेहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्म काएणं फासेइ जाव आराहित्ता, जेणेव अज्ज चंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्ज चंदणं अज्जं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ । तए णं सा महासेणकण्हा

**अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ।**

अर्थ—इस प्रकार महासेनकृष्णा आर्या ने चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन मे 'आयम्बिल-वर्द्धमान' नामक तप का सूत्रोक्त विधि से आराधन किया। इसमे आयम्बिल के पांच हजार पचास दिन होते है और उपवास के एक सौ दिन होते हैं। इस प्रकार सभी मिला कर पाँच हजार एक सौ पचास दिन होते हैं। इस तप मे चढना ही है, उतरना नही है।

इसके बाद वह महासेनकृष्णा आर्या, आर्य चन्दनबाला आर्या के पास आई और वंदन-नमस्कार किया। इसके बाद उपवास आदि बहुत-सी तपश्चर्या करती और आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। उन कठिन तपस्याओ के कारण वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, तथापि आन्तरिक तप-तेज के कारण वह अत्यन्त शोभित होने लगी।

**तएणं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया-कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता, जहा खंदयस्स जाव अज्ज चंदणं अज्ज आपुच्छइ जाव संलेहणा, कालं अणवकंखमाणी विहरइ। तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्ज चंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस्स वासाइं परियायं पालइत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए**

**कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ चरिमं उस्सासणीसासेहिं सिद्धा बुद्धा ।**

अर्थ–एक दिन पिछली रात्रि के समय महासेनकृष्णा आर्या ने स्कन्दक के समान चिंतन किया–"मेरा शरीर तपस्या से कृश हो गया है, तथापि अभी तक मुझ में उत्थान, बल, वीर्य आदि है। इसलिए कल सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनवाला आर्या के पास जा कर, उनसे आज्ञा ले कर संथारा करूँ।" तदनुसार दूसरे दिन सूर्योदय होते ही आर्य चन्दनवाला आर्या के पास जा कर वन्दन-नमस्कार कर के संथारे के लिए आज्ञा मांगी। आज्ञा ले कर संथारा ग्रहण किया और मरण को न चाहती हुई धर्मध्यान में तल्लीन रहने लगी।

महासेनकृष्णा आर्या ने चन्दनवाला आर्या से सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सत्तरह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया तथा एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करती हुई, साठ भक्तों को अनशन से छेदित कर, अन्तिम श्वासोच्छ्वास में अपने सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर के मोक्ष पहुँची।

**अट्ठ य वासा आदी, एकोत्तरीयाए जाव सत्तरस।**
**एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाण णायव्वो ॥**

अर्थ–इन दस आर्याओं में से प्रथम काली आर्या ने आठ वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। दूसरी सुकाली आर्या ने नौ वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। इस प्रकार क्रमशः उत्तरोत्तर एक-एक रानी के चारित्र-पर्याय में एक वर्ष

की वृद्धि होती गई। अन्तिम दसवी रानी महासेनकृष्णा आर्या ने सत्तरह वर्ष तक चारित्र-पर्याय का पालन किया। ये सभी राजा श्रेणिक की रानियाँ थी और कोणिक राजा की छोटी माताएँ थी।

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

**एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।**

अर्थ–हे जम्बू ! अपने शासन की अपेक्षा से धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामी–जो मोक्ष प्राप्त है, उन्होने आठवें अंग अंतगडदसा सूत्र का यह भाव प्ररूपित किया है। भगवान् से जैसा मैंने सुना, उसी प्रकार तुम्हे कहा है।

**अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो अट्ठ वग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जति तत्थ पढमबितिवग्गे दस-दस (अट्ठ ?) उद्देसगा, तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थपंचमवग्गे दस-दस उद्देसगा, छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तम वग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा णायाधम्मकहाणं।**

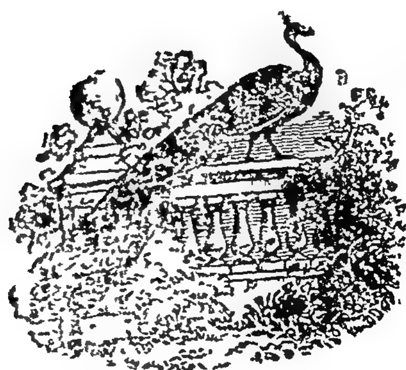
॥ अंतगडदसा समत्ता ॥

इस अन्तकृतदसा सूत्र मे एक श्रुतस्कन्ध है और आठ

वर्ग है। इसको आठ दिनों में वांचा जाता है। इसके प्रथम और द्वितीय वर्ग में दस-दस (दूसरे में आठ) उद्देशक (अध्ययन) हैं। तीसरे वर्ग मे तेरह, चतुर्थ और पाँचवें वर्ग में दस-दस अध्ययन है। छठे वर्ग में सोलह, सातवे वर्ग मे तेरह और आठवें में दस अध्ययन है।

**विवेचन**—उपलब्ध अन्तकृतदशा के दूसरे वर्ग मे आठ उद्देशक ही हैं, लिपि प्रमाद से दूसरे वर्ग मे दस उद्देशक बता दिये गये हो अथवा दस उद्देशकात्मक द्वितीय वर्ग वाला अन्य वाचनीय अन्तकृत रहा हो, यह निर्णय ज्ञानीगम्य है।

## ॥ अंतकृतदशा सूत्र समाप्त ॥



# परिशिष्ट

## (१)

(१) **चंपा**–वर्तमान में भागलपुर से तीन मील दूर पश्चिम मे आये हुए चम्पानाला नामक स्थान को पं श्री कल्याणविजयजी ने तत्कालीन चंपा नगरी निरुपित किया है[1] (पृ. १)।

(२) **महया हिमवंत वण्णओ**–जिस प्रकार हिमवत पर्वत क्षेत्र-मर्यादा करता है, वैसे ही मर्यादा के कर्त्ता एवं पालन करने-करवाने वाले योग्य राजा के लिए हिमवंत पर्वत की उपमा दी जाती है (पृ. १)।

(३) **बारवइ णयरी**–सौराष्ट्र देश की राजधानी, जिसे द्वारवती, द्वारावती, द्वारामति, द्वारिका आदि नामो से जाना जाता है[2] (पृ. ५)।

(४) **सामाइयमाइयाइ एक्कारस अंगाइ**–आवश्यक सूत्र का प्रथम आवश्यक सामायिक आदि छहो आवश्यको को जानकर ग्यारह अंगो का ज्ञान किया–इस अर्थ मे यह पद आया है (पृ. ११)।

(५) **काकंदी णयरी**–गोरखपुर से दक्षिण पूर्व मे तीन मील पर तथा नूनखार स्टेशन से दो मील दूर जिस स्थान को किष्किधा खुखुदोजी नामक तीर्थ कहा जाता है, वह प्राचीन काकंदी कही जाती है[3] (पृ. १३५)।

(६) **सागेए णयरे**––साकेत नगर––फैजाबाद मे पूर्वो-

त्तर छह मील पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित अयोध्या के समीप ही प्राचीन साकेत नगर बताया जाता है।[४] (पृ १३५)

(७) **वाणियगामे**–वाणिज्यग्राम–आज कल बसाडपट्टी के पास वाला वजिया ग्राम ही प्राचीन वाणिज्यग्राम हो सकता है[५] (पृ. १३५)।

(८) **सावत्थी णयरी**––श्रावस्ती नगरी––गौडा जिले में अकौना से पूर्व पांच मील दूर, बलरामपुर से पश्चिम मे बारह मील, रापती नदी के दक्षिण तट पर सहेठमहेठ नाम से प्रख्यात स्थान को प्राचीन श्रावस्ती माना गया है[६] (पृ. १३६)।

(९) **पोलासपुर**–––अतिमुक्तक अणगार की जन्मभूमि उत्तर भारत की समृद्ध नगरी बताई गई है, पर वर्तमान परिपेक्ष्य में उसका पता नही है[७] (पृ. १३८)।

(१०) **वाणारसिए**––वाणारसी नगरी–काशी देश की तत्कालीन राजधानी, आज का प्रसिद्ध बनारस नगर[८]। (पृ. १५०)

(११) **चेइय–पुण्णभद्दे चेइय**–पृ १, यहाँ चैत्य का प्रकरण संगत अर्थ यक्षायतन किया गया है। पृ. १०४ पर 'गणसिलए चेइए' पद का अर्थ गुणशीलक उद्यान किया गया है। 'चेइय' शब्द का प्रयोग श्री उत्तराध्ययन सूत्र के नववे अध्ययन में वृक्ष व उद्यान दोनो अर्थो मे अलग-अलग भी हुआ

१—८—देखिए पं. श्री कल्याणविजयजी द्वारा लिखित 'श्रमण भगवान् महावीर' ग्रंथ का 'विहार स्थल नाम कोप।'

है। श्री उपासकदशा सूत्र में चैत्य का अर्थ साधु अर्थ मे भी किया गया है। 'शब्द के अनेक अर्थ होते हैं'—इस नियम को जानने वालो के लिए यह कोई आश्चर्य की बात भी नही है। 'जयध्वज' पृ. ५७३ से यह जानने को मिलता है कि चैत्य शब्द के ५७ व चेइय शब्द के ५५ कुल ११२ अर्थो का संयोजन २८ गाथाओ में किया गया है। अत. चैत्य शब्द का प्रकरण संगत अर्थ किया जाना उचित है।

## (२)

श्री अन्तकृत मे अन्य आगम-स्थलो का संकेत—

(१) पृ. १–'वण्णओ' सभी वर्णक पद श्री उववाई सूत्र का संकेत करते हैं।

(२) पृ. २–'सुहम्मे थेरे जाव पंचहि'.......यह पद श्री ज्ञाताधर्म कथाग सूत्र के प्रथम अध्ययन का संकेत करता है। पूज्य गुरुदेव श्री के अनुसार उपरोक्त स्थल मे वर्णित सभी विशेषणो को गणधर भगवान् के गुण माना जाता है।

(३) पृ. २–'परिसा णिग्गया जाव पडिगया'–यह संकेत श्री उववाई सूत्र के लिये है, जहाँ परिषदा के आगमन–निर्गमन का सविस्तार वर्णन है।

(४) पृ. ३ 'अज्ज जंबू जाव पज्जुवासमाणे'–यह संकेत भी ज्ञाता अ. १ अथवा गौतमस्वामी की सादृश्यताहेतुक हो तो भगवती सूत्र के प्रारंभ का समझना चाहिये।

(५) पृ. ९, पृ. १० 'जहा मेहे'–ज्ञाता अ. १।

(६) पृ. २९–'जहा गोयमसामी' भगवती, उपासकदसा आदि ।

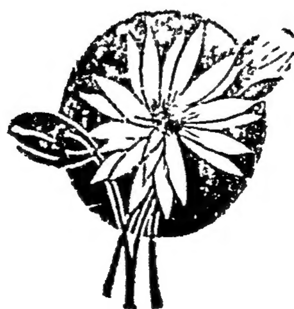
(७) पृ. ३७–'जहा देवाणंदा'–भगवती श. ९ उ. ३३ ।

(८) पृ. ५१–'रिउव्वेय जाव सुपरिणिट्ठिए'–भगवती श. २ उ. १ ।

(९) पृ. ५६–'जहा महव्वलस्स'––भगवती श. ११ उ. ११ ।

(१०) पृ. ६१–'उज्जला जाव दुरहियासा'–रायपसेणी प्रदेशी वर्णन ।

आगमकारों ने 'जाव' शब्द से स्थान-स्थान पर विस्तृत पाठों का जो संकोच किया है, वे अन्य आगमो में उपलब्ध होते है । अतः अंतकृत सूत्र के व्याख्याता को अन्यान्य आगमो का भी अध्ययन करना अत्यावश्यक ध्यान मे आता है ।



# संघ के प्रकाशन

| | मूल्य |
|---|---|
| १ मोक्षमार्ग ग्रंथ भाग १ | १०-०० |
| २ भगवती सूत्र भाग १ | अप्राप्य |
| ३ " " २ | " |
| ४ " " ३ | " |
| ५ " " ४ | " |
| ६ " " ५ | " |
| ७ " " ६ | " |
| " " ७ | " |
| ९ उत्तराध्ययन सूत्र | १२-०० |
| १० उववाइय सुत्त | अप्राप्य |
| ११ दशवैकालिक सूत्र | ४-०० |
| १२ अंतगडदसा सूत्र | ३-०० |
| १३ सुखविपाक सूत्र | ०-५५ |
| १४ सिद्धस्तुति | अप्राप्य |
| १५ प्रतिक्रमण सूत्र | ०-६० |
| १६ रजनीश दर्शन | अप्राप्य |
| १७ संसार तरणिका | १-२५ |
| १८ अनुत्तरोववाइय सूत्र | ०-५० |
| १९ प्रश्नव्याकरण सूत्र | ७-०० |
| २० नन्दी सूत्र | अप्राप्य |
| २१ मगल प्रभातिका | ०-६० |
| २२ सम्यक्त्व विमर्श | अप्राप्य |
| २३ आलोचना पचक | ०-४० |
| २४ जीव धड़ा | ०-३० |
| २५ लघुदंडक | ०-६० |

| | मूल्य |
|---|---|
| २६ महादण्डक | ०–६० |
| २७ तेतीस बोल | ०–४० |
| २८ गुणस्थान स्वरूप | ०–४० |
| २९ सामायिक सूत्र | ०–२० |
| ३० गति-आगति | ०–२० |
| ३१ नव तत्त्व | २–०० |
| ३२ कर्म-प्रकृति | ०–२५ |
| ३३ पच्चीस बोल | ०–६० |
| ३४ शिविर व्याख्यान | ३–५० |
| ३५ समिति गुप्ति | ०–४० |
| ३६ जैन स्वाध्यायमाला | ४–५० |
| ३७ तीर्थंकरा का लेखा | अप्राप्य |
| ३८ समकित के ६७ बोल | ०–३० |
| ३९ सार्थ सामायिक सूत्र | ०–६० |
| ४० तत्त्व-पृच्छा | ३–०० |
| ४१ एक सौ दो बोल का बासठिया | ०–२५ |
| ४२–४३ समर्थ समाधान भाग १ व २ | अप्राप्य |
| ४४ स्तवन तरंगिणी | २–०० |
| ४५ विनयचंद चौबीसी और शांति प्रकाश | ०–५५ |
| ४६ तीर्थंकर-पद प्राप्ति के उपाय | अप्राप्य |
| ४७ भवनाशिनी भावना | ०–६० |
| ४८ तीर्थंकर चरित्र भाग १ | अप्राप्य |
| ४९ तीर्थंकर चरित्र भाग २ | १०–०० |
| ५० तीर्थंकर चरित्र भाग ३ | ९–०० |
| ५१ अंतकृत विवेचन | अप्राप्य |
| ५२ आत्मशुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी | ३–५० |

| | | |
|---|---|---|
| | | मूल्य |
| ५३ | उपासकदशांग सूत्र | ४-०० |
| ५४ | जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १ | ३-५० |
| ५५ | समर्थ समाधान भाग ३ | ३-५० |
| ५६ | अंगपविट्ठ सुत्ताणि भाग १ | १४-०० |
| ५७ | सामण्ण-सद्धि धम्मो | १-०० |
| ५८ | अंगपविट्ठ सुत्ताणि भाग २ | २५-०० |
| ५९ | जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २ | ३-०० |
| ६० | अंगपविट्ठ सुत्ताणि भाग ३ | १२-०० |
| ६१ | अंगपविट्ठ सुत्ताणि-एक्कारसंगसंजुओ | ६०-०० |
| ६२ | अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १ | २५-०० |
| ६३ | दसवेयालियउत्तरज्झयणसुत्तं | ३-००० |
| ६४ | अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २ | ३०-०० |

